



विषय-सूची

विषय	संख्या
१-देवर्षि नारद [कविता]	... १२६९
२-कल्याण ('शिव')	... १२७०
३-हे मानव ! तू अपनी महिमा पहचान (पूज्य स्वामीजी श्रीशरणानन्दजी महाराजके प्रवचनसे; संकल्यिता- 'माधव')	... १२७१
४-श्रम-निवारण, शान्ति (दि० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)	... १२७५
५-ब्राह्मणके लिये त्रिसंध्या परम कर्तव्य (महात्मा श्रीसीताराम ओंकारनाथजी महाराज)	... १२७८
६-लोभ रावण और शान्ति सीता (आचार्य श्रीतुलसीजी)	... १२८०
७-ईश-स्तवन (डॉ० श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम० ए०)	... १२८१
८-मधुर	... १२८२
९-कवहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो (श्रीराजेश्वर- प्रसादजी चतुर्वेदी एम० ए०, बी० एस्- सी०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)	... १२८३
१०-कम-से-कम आवश्यकता—मुख-शान्तिका सच्चा एवं अनुभूत उपाय (श्रीअगर- चन्दजी नाहटा)	... १२८७
११-टर्कमें बालक इस्माइलके पुनर्जन्मकी घटना (प्रोफेसर श्रीहिमेन्द्रनाथ बनर्जी, डाइरेक्टर पैरासाइकोलॉजी-विभाग)	... १२९०
१२-निष्काम कर्म जीवन है [कविता] (विद्यावाचस्पति डा० श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्०)	... १२९२
१३-अनुगीता और अनासक्ति (डा० श्रीकन्हैया- लालजी सहल, एम० ए०)	... १२९३
१४-अभी कुछ नहीं बिगड़ा (श्रीराजेन्द्र- प्रसादजी जैन)	... १२९४

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष २०२१, नवम्बर १९६४

विषय	पृष्ठ-संख्या
१५-तन्त्रोपचारका रहस्य (श्रीलालजीरामजी शुक्ल एम० ए०)	... १२९५
१६-समताका महत्व (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	... १२९८
१७-प्रियतम प्रभुकी सहज कृपा [कविता]	... १३००
१८-त्रिगुण-विजय (श्रीमती डा० स्वर्णलता अग्रवाल, एम० ए०, पी-एच्० डी०)	... १३०१
१९-अर्चावतार [कहानी] (श्री 'चक्र')	... १३०२
२०-श्रीभगवन्नाम-जप (नाम-जप-विभाग, कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर)	... १३०५
२१-राष्ट्र-लक्ष्मी (डा० श्रीखीन्द्रजीअग्निहोत्री एम० ए०, बी० टी०, पी-एच्० डी०)	... १३०८
२२-वातावरणका भी विचित्र प्रभाव होता है (डा० श्रीरामचरणजीमहेन्द्र, एम० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)	... १३११
२३-हमारे जीवनका मानदण्ड—सदाचार (स्वामीजी श्रीकेशवपुरीजी)	... १३१५
२४-भारतीय राजनीति तबकी और आजकी (श्रीरामनिरीक्षणसिंहजी, एम० ए०, काव्यतीर्थ)	... १३१७
२५-श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा (पं० श्रीदेवधरजी शर्मा, मन्त्री-श्रीकृष्ण-जन्म- स्थान-संघ)	... १३२०
२६-दैनिक जीवनमें 'स्वर-विज्ञान' (श्रीशशि- प्रकाशजी शर्मा, एम० ए०, बी० कॉम०, विशारद)	... १३२३
२७-गोपाष्टमी-महोत्सवपर गोरक्षा-राष्ट्रीय- सप्ताहका देशव्यापी आयोजन	... १३२५
२८-प्रभुसे प्रार्थना [कविता]	... १३२६
२९-श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	... १३२७
३०-पढ़ो, समझो और करो	... १३२९

चित्र-सूची

१-वीणापाणि या सरस्वती	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२-भजनमय देवर्षि नारद	(तिरंगा)	१२६९

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिल्लिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनंद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ४५ पै०
विदेशमें ५६ पै०
(१० पेंस)



भजनमय देवर्षि नारद

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



सर्वाष्टिहरं सुखैकरमणं शान्त्यास्पदं भक्तिदं स्मृत्या ब्रह्मपदप्रदं स्वरसदं प्रेमास्पदं शाश्वतम् ।
मेघश्यामशरीरमच्युतपदं पीताम्बरं सुन्दरं श्रीकृष्णं सततं व्रजामि शरणं कायेन वाचा धिया ॥

वर्ष ३८ }

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष २०२१, नवम्बर १९६४

{ संख्या ११
पूर्ण संख्या ४५६

देवर्षि नारद

नित्य निरन्तर करते रहते सहज मधुर प्रभुका गुणगान ।
नित्य छेड़ते रहते नव नव मधुमय नाम-गानकी तान ॥
निर्मल परम ज्ञानकी मूर्ति निर्मल प्रेमरत्नकी खान ।
प्रेमभक्ति-पथके सर्वोपरि मुनि नारद आचार्य महान् ॥

कल्याण

याद रखो—हमारे सोचने या करनेसे दूसरे किसीका अमङ्गल नहीं हो सकता । अमङ्गलरूपी फल मिलता है अपने पूर्वकृत कर्मोंके परिणामस्वरूप । इस स्थितिमें हम जब किसीका अमङ्गल सोचते-करते हैं तो हम अपना ही अमङ्गल करते हैं । हमारा चित्त जब किसी भी दूसरेके प्रति द्वेष रखता है और उसका अमङ्गल सोचता है तो उसका प्रभाव हमारे ही जीवनपर पड़ता है । हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही अपनेको बनाते जाते हैं ।

याद रखो—भगवान्‌के राज्यमें अनेक प्रकारके मङ्गल हैं और भगवान्‌ने हमको मङ्गलमय विचार रखनेकी विचित्र शक्ति भी दी है । हम यदि उस शक्तिका सदुपयोग करें तो उससे हमारा तो सुख-आनन्द बढ़ेगा ही, हम दूसरे लोगोंमें भी सुख-आनन्दकी वृद्धिमें हेतु बनेंगे ।

याद रखो—जब हम दूसरोंका भला सोचते-करते हैं, तब अपना ही भला करते हैं । भला सोचते-सोचते भला करनेकी प्रवृत्ति बढ़ती है, फिर भला करना ही स्वभाव बन जाता है और जब हम दूसरोंका भला करते हैं तो उनपर बहुत ही सुन्दर प्रभाव पड़ता है, वे भी बदलेमें हमारा भला सोचने-करने लगते हैं । इस प्रकार परस्पर एक दूसरेका भला सोचने-करनेसे सहज ही सबका भला होता है । हम भलेके प्रसार-विस्तारके पुण्यकार्यका सौभाग्य प्राप्त करते हैं ।

याद रखो—भगवान्‌की दी हुई भला करनेकी शक्ति और समयका जो समयपर पूर्णरूपसे उपयोग करते हैं उनकी शक्ति और भी बढ़ती है; परंतु जो समयपर शक्तिका सदुपयोग नहीं करते, उनको पछताना ही पड़ता है । शक्ति क्षीण होते-होते नष्ट हो जाती है । अतएव प्राप्त अवसरको खोओ मत, भले कामको कलपर मत रखो । उसे अभी कर लो और करो

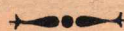
यथासाध्य पूरे मनसे यथायोग्य पूरी शक्ति लगाकर । तुम्हें भगवान्‌की कृपा प्राप्त होगी । तुम्हारी शक्ति बढ़ेगी और तुम जगत्‌का कल्याण करनेवाले भगवान्‌के हाथके एक महान्‌ यन्त्र बनकर अपनेको धन्य कर सकोगे ।

याद रखो—हम दूसरोंसे सदा यही चाहते और आशा रखते हैं कि सब लोग हमारा भला करें, हमें सुख पहुँचावें, हमारा हित करें । हमारा बुरा कोई न करे, हमें दुःख कोई भी न पहुँचावे, हमारा अहित कोई भी न करे । वस, तुम जो चाहते हो, वही दूसरोंके साथ करना आरम्भ कर दो । तुम्हारी की हुई भलाई अनन्तगुनी होकर तुम्हारे पास वैसे ही लौट आयेगी, जैसे खेतमें थोड़ेसे बीज बोनेवालेको अनन्तगुना होकर अनाज प्राप्त होता है ।

याद रखो—जो अपना सुख, मङ्गल, हित चाहता है पर दूसरोंका नहीं चाहता वरं दूसरोंको दुःख पहुँचाता, उनका अमङ्गल एवं अहित चाहता है, उसको कभी भी सुख, मङ्गल, हित प्राप्त नहीं हो सकता । वह एक बार मोहवश भले ही अपनेको ही सुखी मान ले, पर वह सुखी कभी हो नहीं सकता । दूसरोंका अमङ्गल चाहना, अपना ही अमङ्गल करना है । यह ध्रुव निश्चय है, परम सत्य सिद्धान्त है ।

याद रखो—तुम बुरी बात सोचनेके लिये आये ही नहीं हो । भगवान्‌ने तुमको मनुष्यशरीर दिया है सबका सदा मङ्गल सोचते-करते ही अपना मङ्गल करनेके लिये और अन्तमें परम मङ्गलमय भगवान्‌की मङ्गलमयी प्राप्ति करनेके लिये । यही मानवके नाते तुम्हारे जीवनका लक्ष्य है और इस महान्‌ लक्ष्यकी ओर सावधानीके साथ चलते और आगे बढ़ते रहना ही तुम्हारा एक मात्र परम कर्तव्य है । इस महान्‌ लक्ष्यको ध्यानमें रखो और अपने कर्तव्यका पालन करते रहो ।

‘शिव’



हे मानव ! तू अपनी महिमा पहचान

(पूज्य स्वामीजी श्रीशरणानन्दजी महाराजके प्रवचनसे)

[संकल्यिता—‘माधव’ (यथाश्रुत, यथागृहीत)]

सत्सङ्गका यह आयोजन जीवनके अभावका अभाव करनेके लिये होता है। सत्सङ्गका अर्थ है—प्रभुका सङ्ग, अपने रचयिताका सङ्ग। सृष्टिका कर्ता हम सबका अपना अवश्य है। किसी भी कृतिके पीछे उसके कर्ताकी सत्ता रहती है। इस दृष्टिसे यह सत्य है कि कोई इन सबका अपना है, जिसके सम्बन्धमें संतोसे, शास्त्रोंसे सुना तो है, पर जिसे देखा नहीं है। जो कुछ हमारे देखनेमें आया है, उससे प्रतीत हुआ कि मिले हुएपर हमारा अधिकार नहीं है।

सत्सङ्ग हम अपने द्वारा नहीं करते, इसीसे भूल हो जाती है। जो मिला है या दिखायी देता है, उसे कुछ तो दुःखरूप मानते हैं, कुछ ‘नहीं’ मानते और कुछ प्रभुकी लीला मानते हैं। मिला हुआ जब जैसा दिखायी देता है, वह वैसा है नहीं, उसपर हमारा कोई अधिकार नहीं है। हम अपने ज्ञानका अनादर करते हैं, इसीसे दुःख पाते हैं।

सत्कर्म, सच्चर्चा और सच्चिन्तन सत्सङ्ग नहीं है। यह तो सत्सङ्गका परिणाम है। मिला हुआ रहेगा नहीं, मिले हुए रहेंगे नहीं, इतना ही तो ज्ञान है। फिर ममता और कामना कहाँ रहेंगी ? मिले हुए पदार्थोंसे मिले हुए व्यक्तियों की सेवा करना—यही ज्ञानका क्रियात्मक रूप है। सत्सङ्ग कोई अभ्यास नहीं है। सत्यको स्वीकार कर लेना ही सत्सङ्ग है। सत्सङ्ग मानवमात्र स्वाधीनतापूर्वक अपने-आप कर सकता है। ममतारहित, कामनारहित, सुने हुएमें विश्वास—यही तो सत्सङ्ग है। हमारे रचयिताने हमें यह सारी शक्ति देकर भेजा है। उसने ज्ञान देकर स्वाधीन बना दिया। यहाँतक कि यदि ‘उसे’ भी न मानें तो कोई हानि नहीं। जो मिला है उसे वापस कर दो, फिर सारा संसार जय-जयकार करेगा। उनकी करुणाका क्या वारापार है ? श्रद्धा विश्वास प्रदान करती है, विश्वास आस्था लाता है। सामर्थ्य, श्रद्धा, ज्ञान सबको प्राप्त है। प्रभुने समस्त साधन-सामग्री दी है, ताकि आपकी जय-जयकार हो। सुने हुएपर विश्वास, मिले हुएका सदुपयोग, ज्ञानका आदर—यही सत्सङ्गकी महिमा है। कर्म-सामग्री, भाव, शक्ति सभी प्राप्त हैं। ज्ञानका अनादर

तो हम स्वयं करते हैं। ईश्वर क्या है ? यह तो ईश्वर ही जानता है। फिर, हम उसपर क्या हुकूमत चलायें ? मानने का एकमात्र उपयोग प्रभुपर ही हो सकता है। अलग होनेके लिये मिले हैं, मरनेके लिये जन्मे हैं। यह जानते ही हम ममतारहित, निष्काम और असङ्ग होकर समता, चिर-शान्ति और निर्विकारताको अपने-आप अपने अंदर विकसित होते पायेंगे। जहाँ समता है, वहीं योग है। जहाँ निर्विकारता है, वहीं सौन्दर्य है और जहाँ शान्ति है, वहीं सरसता है। सत्सङ्गके द्वारा हम कर्तव्यनिष्ठ, असङ्ग, शरणागत हो सकते हैं। जब हम अपने सत्यको स्वयं ठुकराते हैं, तभी हम दुखी होते हैं।

जिस किसीको जो कुछ वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य मिली है, वह जगत्के लिये है। जो श्रद्धा-विश्वास मिला है, वह प्रभुके लिये है और जो ज्ञान है, वह अपने लिये है। भजनका अर्थ है निरभिमानता, उदारता, प्रियता। ईश्वरवाद कहता है ईश्वर प्यारका सागर है। द्वैतवाद कहता है ईश्वर ज्ञानका सागर है और भौतिकवाद कहता है ईश्वर सम्पूर्ण कर्मोंका केन्द्र है। अपने द्वारा जाने हुए असत्का त्याग और सत्यका स्वीकार करें। इसीके द्वारा ही आप अपने प्यारे रचयिताको अपना सकते हैं।

सत्सङ्ग मानवमात्रका स्वधर्म है। स्वधर्मके सम्पादनमें हम सभी स्वाधीन हैं। सत्सङ्गका फल है—साधनकी अभिव्यक्ति और असाधनका नाश। सत्सङ्गसे साधनकी उपलब्धि होती है। साधनसे साध्यकी प्राप्ति होती है। साध्य वही है जो आपका जीवन है। साधन और साध्य दो चीजें नहीं हैं। भोगके क्षेत्रमें साधन-साध्य अलग हैं। परंतु सत्सङ्गमें वैसा नहीं। साधन और जीवनमें विभाजन नहीं हो सकता। योगसे योगीका, ज्ञानसे ज्ञानीका और प्रेमसे प्रेमीका विभाजन नहीं हो सकता। जिसका विभाजन नहीं हो सकता, वह है साधन। साधन उपाय हो, साध्य फल हो, ऐसा नहीं। साधन सत्सङ्गका फल है। साधन ही जिसका स्वभाव हो, वही साध्य है। साधन जिसकी माँग हो, वही है साधक। जैसे प्रेमी और प्रेमास्पद एक हैं, वैसे ही साधन और साध्य एक हैं।

प्रत्येक व्यक्ति सत्सङ्ग करने और सत्सङ्गी होनेमें स्वाधीन है ।
साधन मानवका स्वधर्म है ।

सुने हुएमें श्रद्धा, मिले हुएका उपयोग और जाने हुएका आदर—यही 'स्वधर्म' है । सत्सङ्गमें प्राणी पराधीन नहीं है । सत्सङ्गसे सत्-चिन्तन होने लगता है, सत्कर्म होने लगता है । मिले हुएका उपयोग हम अपने-आप नहीं कर सकते, एक विधानके अनुसार कर सकते हैं । यही है कर्म-विधान । वह विधान सबमें मौजूद है । जब रुचिपर विधान विजयी होता है, तभी होते हैं धर्मात्मा । रुचिपर विधानकी पराजय ही पतनका लक्षण है । रुचि और विधानकी एकता ही वास्तविक जीवन है । विधानके अधीन रुचि बनाओ, रुचिके अधीन विधान नहीं । रुचिकी उत्पत्ति होती है पराधीनताके सुखके भोगसे । विधानका ज्ञान होता है योगसे, रुचि उत्पन्न होती है भोगसे । विधान प्रगतिका लक्षण है, रुचि पराधीनताका । योगसे विधानको जानें, भोगसे उत्पन्न रुचिपर विजयी हो जायँ । इसके दो उपाय हैं—'धर्म-विज्ञान' और 'योग-विज्ञान' ।

धर्म और योग एक ही सिक्केके दो पहलू हैं । सही करनेसे प्रवृत्तिका नाश होता है । भोगका आरम्भ भूलसे होता है । भूल कबसे हुई, पता नहीं । परंतु अभी मिट सकती है । भूल मिटानेका सबसे सुन्दर उपाय है अपने जीवनमें अपनी भूल जाननेके लिये कुछ काल आराम करनेका समय निकालें । भूलका ज्ञान भूलके नाशका हेतु है । भूलके नाशका जो उपाय है, वही सत्सङ्ग है ।

कर्म परिस्थितिके अनुसार होता है । वस्तु, परिस्थिति, योग्यता, सामर्थ्य आदिका सम्बन्ध है । ऐसा काम न करें जो दूसरोंके लिये अहितकर हो जाय, किसीके विनाश और अवनतिका कारण बन जाय । हम वह नहीं करेंगे जो औरोंके लिये अहितकर हो । हम वह नहीं करेंगे जो हमारी परिस्थितिके अनुकूल न हो । योगमें अपूर्व गति है । वह पराधीनतासे स्वाधीनताकी ओर, मृत्युसे अमरत्वकी ओर एवं नीरसतासे सरसताकी ओर ले जायगा ।

विश्रामसे असमर्थमें सामर्थ्य और श्रद्धावान्के जीवनमें प्रियता जाग्रत होती है । यही है—'मूक-सत्सङ्ग' या 'नित्य-योग' । विश्राममें ही नित्य-योग है । विश्राममें ही सत्सङ्ग है । विश्रामके लिये रुचिपर विजयी होना है । तभी देहाभिमान गलेगा । हम तभी कृतकृत्य होंगे ।

सत्य वही है जो सभीके लिये और सर्वदा सम्भव हो । परिस्थितिकी दृष्टिसे दो मानव कभी समान नहीं होते । मानवमात्रको सत्य मिल सकता है; उसीमें जीवन है । वह जीवन है अभावरहित, पराधीनतारहित, नीरसतारहित । आप अपने अनुभवके प्रकाशमें मिली हुई वस्तु, योग्यता और सामर्थ्यका दुरुपयोग न करें । हर भाई, हर बहन किसीके लिये भी अहितकर, अनुपयोगी न हो—इसी सत्यको अपनाकर वह मानव होता है और उसका विकास स्वतः होने लगता है; क्योंकि प्रभुकी कृपा, सत्पुरुषोंकी सद्भावना और जगत्की उदारता सदा सबके साथ रहती है ।

× × ×

साधकके सामने यह प्रश्न है कि करना चाहते हैं, नहीं कर पाते । यदि कुछ करना चाहें तभी न कुछ करनेका आश्रय नष्ट होगा । करनेसे क्या मिला सम्मान या भोग । गलत किया तो अपमान मिला, शोक मिला । सहजभावसे सदाके लिये व्यावहारिक बात यह है कि अपने लिये कुछ मत करो । करना है सेवा शरीरकी, समाजकी, विश्वकी, भगवान्की । जिसकी सेवा करनी है, उससे कुछ आशा न करो । ईश्वरवादका प्रचार ही अनीश्वरवादको जन्म देता है । शरीरकी सेवा करो, परंतु उसे बराबर बनाये रखनेकी बात मत सोचो । तुम्हारा कोई काम ऐसा न हो जो भगवान्का न हो, भगवान्के लिये न हो । पूजा खण्डित नहीं होती । कुछ देर पूजा और शेष समय पाखण्ड ! यह कैसा ? क्या ईश्वरकी पूजा श्रम है ? जो ईश्वरको मानता है, वह औरको कैसे मानेगा ? जो किसीको भी चाहता है वह ईश्वरको नहीं चाहता । यदि करनेका शौक है तो पूजा करो । ईश्वरके नाते कर्म पूजा है और जगत्के नाते कर्म कर्तव्य है । प्रभुके नाते प्रभु-प्रेम अवश्य मिलेगा । हर कामको प्रभुका काम समझनेपर पूजा स्वयं होती है । अपने लिये जो कुछ किया जाता है, वह है—भोग । अपनेको अपने लिये कुछ नहीं करना है । बुराई करनेवाले मनुष्यसे पशु लाख दर्जे अच्छा है । बुराई न करनेवाले मनुष्य देवतासे लाख दर्जे अच्छे हैं । भगवान्की महिमामें आस्था, श्रद्धा-विश्वास करनेसे विषयचिन्तन अपने-आप समाप्त हो जाता है ।

सेवाके दो रूप हैं—क्रियात्मक और भावात्मक । क्रियात्मक ससीम है, भावात्मक अससीम । किसीको बुरा नहीं मानेंगे, बुरा नहीं चाहेंगे और बुरा नहीं करेंगे—यही

साधकका जीवन है। किसीको बुरा मानना, बुरा चाहना, बुरा करना—मानवका अधिकार ही नहीं है। भावात्मक सेवासे प्रेमका उदय होता है। अपनेको जाननेमें अपेक्षित है अपना ज्ञान, न कि बाह्य गुरु या शास्त्र। अपनेको जाननेका पहला उपाय यह है कि यह मैं नहीं हूँ। उसे कर्तव्य नहीं कहते, जिसका आरम्भ हो और अन्त न हो। और उसे प्रेम नहीं कहते जिसका आरम्भ हो, अन्त हो। 'यह' में अहंबुद्धि न होनेपर समताके साम्राज्यमें प्रवेश हो जाता है। यह समता ही योगकी भूमि है। योगमें गति है। वह शून्य या जडता नहीं है। योग शक्ति प्रदान करता है। जिज्ञासु हैं तो तत्त्वज्ञान और साक्षात्कार, भक्त हैं तो भगवत्-प्रीति और भगवत्-साक्षात्कार। समतामें जीवन है और समता-प्राप्तिमें आप स्वाधीन हैं। कामना-आसक्तिके रहते समता आयेगी कहाँ ? जानना है तो अपनेको जानो, सेवा करना है तो जगत्की सेवा करो और मानना है तो प्रभुको मानो—उस प्रभुको, जो न मानने-पर भी आपका अपना है। 'वह' कहता है कि एक बार भी यह मान लेता तो मैं सदाके लिये ऋणी हो जाता। उससे कुछ माँगो मत। माँगो कि अपनापन छिन गया। आदर-पूर्वक जीनेके लिये संसारसे कुछ माँगो मत। अपनेको जाननेके लिये अपने ज्ञानका आदर करो। कर्तव्यनिष्ठ होकर जगत्के लिये और श्रद्धानिष्ठ होकर तुम प्रभुके लिये उपयोगी हो सकते हो। हे मानव ! तेरी यह महिमा है जिसे तेरे रचयिताने तुझे दी है। अपनेको जानो—यही सत्सङ्गका क्रियात्मक रूप है।

साधकके जीवनमें विस्मृति क्यों है ? वह है असत्के सङ्गसे। ज्ञानका आदर करनेसे हमारे जीवनमें प्रश्न पैदा होंगे—हमारा कौन है ? हम क्या हैं ? हमें क्या नहीं करना चाहिये ? इनका ज्ञान हमारे अंदर है। हमें अपने कर्तव्यको नहीं भूलना चाहिये। कर्तव्यका ज्ञान कर्तव्यमें है और करनेकी सामर्थ्य है। आँख किसीसे देखनेके लिये और कान किसीसे सुननेके लिये पूछता नहीं। हम जो नहीं कर सकते, वह हमारा कर्तव्य हो नहीं सकता। कभी-कभी हम वह करते हैं जो नहीं करना चाहिये। मनुष्यका पहला पुरुषार्थ है कि हमारे जीवनमें भूल न हो। प्रश्न यह है कि कर्तव्यको हम जानते हैं तो करते क्यों नहीं ? कर्तव्यका अर्थ यह कभी नहीं है कि जो नहीं कर सकते हैं, वह करें। जब आपको अपनी आवश्यकताका ज्ञान होता है तो दूसरोंकी

आवश्यकताका ज्ञान क्यों नहीं होता ? जाननेको न माननेका नाम है भूल। कर्तव्यकी विस्मृति हमने अपने-आप की है। जब हम कुछ भी करने चलते हैं तो जानना चाहते हैं कि इसमें मेरा लाभ क्या है ? कर्तव्यकी विस्मृतिका यह भी कारण है। करनेका सम्बन्ध है दूसरोंसे। अपने लाभकी अपेक्षा दूसरोंके लाभकी बात सोचें तो कर्तव्यकी विस्मृति न हो। सही करनेसे दूसरोंका लाभ और गलत करनेसे अपना सर्वनाश होता है—यही कर्ममीमांसा है। दानसे लाभकी आशा करना लाभको बढ़ाना है। जो कुछ जिसको देते हैं, वह उसीका है। सेवाका अवसर मिला—यह प्रभुकी कृपा है। कीर्तिकी कामनासे की हुई सेवा असेवा है। कार्य करते समय यह बराबर विचार लें कि दूसरोंका इससे क्या लाभ है ? अपने लाभकी बात सोचते ही कर्तव्यकी विस्मृति होती है और अकर्तव्यका उदय होता है। यदि आप अपने ही लाभकी बात सोचते हैं तो कुछ भी न बोलें, कुछ भी न करें, कुछ भी न सोचें। इसका फल योग है।

इन्द्रियोंका व्यापार मनमें और मनका व्यापार बुद्धिमें जबतक विलीन नहीं हो जाता, तबतक बुद्धि 'सम' नहीं होती। जो कुछ कर सकते हो और उससे दूसरोंका हित हो तो उसे अवश्य कर डालना चाहिये। अपने सम्मानके लिये, सुखके लिये जो कुछ करता है, उसे अपमान और दुःख भोगना पड़ता है। जबतक दूसरोंके लाभका ध्यान नहीं रखोगे, अपना लाभ कर नहीं सकते, —कर नहीं सकते। दूसरोंके लाभसे आप अपने लाभके अधिकारी होंगे; क्योंकि तब कर्तव्य करनेसे स्वतः रागसे मुक्त हो जायेंगे। अतः सही काम करके दूसरोंके लाभकी बात सोचनेसे मनुष्य राग-मुक्त हो जाता है। कर्म चिन्तन और स्थितिसे असङ्ग हो जाता है। इसीलिये बीतराग होनेसे चक्रवर्ती सम्राट्से भी अधिक आनन्दयुक्त होता है। कुछ भी न करनेसे समाधि, असङ्गता, निर्विकल्पता अपने-आप आती है। अपने लाभकी बात सोचना ही अपना सर्वनाश है। दूसरोंके लाभकी बात सोचना ही अपने लिये मङ्गलोदय है। जिसे कुछ नहीं चाहिये, वही कुछ न करे। अचाह होना उसके लिये जरूरी है, जिसने यह स्वीकार कर लिया है कि परमात्मा है। ईश्वरवादी सदा अचाह रहेगा। मौजूदको प्राप्त करनेके लिये 'करनेकी बात' है नहीं। अपनी माँग 'है' की है, 'नहीं' की नहीं है। जो मौजूदको पसंद कर ले, वही सुखी है। मिले हुए और देखे हुएको

पसंद किया तो चैन गयी, सर्वनाश हुआ। अचाह होनेपर ही 'मौजूद' की प्राप्ति होती है। जिसे कुछ भी चाहिये वह 'मौजूद' में ठहर नहीं सकता। अचाह होना कितना सुगम है ! 'है' की प्राप्ति कितनी सुगम है ! अचाह होनेपर मौजूदसे सम्बन्ध, सबको प्यार, दूसरोंकी भलाई होती है। यह सब कुछ अचाहसे ही होता है। दुनियामें बड़े-से-बड़े आदमीके समान होनेमें अचाह हो जाना ही हेतु है। भूखको पसंद कर लें तो खिलानेवाला आपको खिलाकर अपनेको धन्य माने। प्यार उसीको मिलता है, जिसे मान नहीं चाहिये। भोग उसे मिलता है, जो अपमान पसंद करे। अप्राप्तकी चिन्ता, प्राप्तकी ममता या संग्रहका अर्थ है गरीबीको निमन्त्रण देना। लोभ दरिद्रताको जन्म देता है, मोह अज्ञानको जन्म देता है—यह निर्विवाद सत्य है। यही ज्ञान है। प्राप्त वस्तुसे आवश्यक वस्तुका उत्पादन अपने लिये नहीं। अपने सम्बन्धमें अपने मत सोचो।

जिसे धारण करनेसे भयरहित शान्ति मिले, वही धर्म है। दूसरोंके अधिकार हमारे द्वारा सुरक्षित रहें। स्वयं अधिकारकी लोलुपतासे मुक्त रहें। अतएव अपना कल्याण अचाह होनेमें, समर्पित होनेमें और निष्काम होनेमें है। अचाह होनेमें हम पराधीन नहीं हैं। पराधीन हैं अपने लाभकी बात सोचनेमें। इसीसे भूल होती है, अवनति होती है। शरीरको बनाये रखनेसे स्वरूपकी विस्मृति होती है। स्वरूपकी विस्मृतिसे कर्तव्यकी विस्मृति होती है। फिर, भगवान्की विस्मृति होती है। मुक्तिकी चाह भी भगवान्की विस्मृतिका कारण है।

स्वाधीन हो जाओ, परंतु स्वाधीनता पसंद न करो। यही है भक्ति। पराधीन होनेपर न अपने कामके होओगे, न जगत्के, न प्रभुके। स्वाधीनता पसंद करनेवाला प्रभुको भूल जाता है। पराधीनता रखना नहीं, स्वाधीनतामें ठहरना नहीं—फिर प्यार, उदारता, भक्ति अपने-आप मिल जाती है। स्वाधीन होनेसे प्रभुकी भक्ति, जगत्की भक्ति दोनों मिलती है। स्वाधीनताका अर्थ है कुछ भी न चाहो। पदकी अधीनता, वस्तुकी अधीनता, व्यक्तिकी अधीनता, परिस्थितिकी अधीनता—ऐसा पराधीन प्राणी अपने लिये, जगत्के लिये हानिकर हो जाता है। मुक्ति प्राप्त करना है—अचाह होकर, असङ्ग होकर। असङ्गताका फल है 'किसी'की

अधीनता। वह किसी 'है' का है। भक्ति, मुक्ति, चिन्मयता, प्यार, अमरत्वका आनन्द यही है।

कुछ भी न चाहनेपर ही भगवान्की चाह पैदा होती है। भगवान् सामने आ जाय तो दुनिया सदाके लिये चली जायगी। भगवान् आते हैं वहाँ, जहाँ कुछ नहीं चाहिये, जहाँ कुछ नहीं है, जिसका कोई नहीं है। कुछ न चाहो, कुछ न रखो, किसी औरको अपना न बनाओ, तभी भगवान् आते हैं। वे इतने बड़े हैं कि अकेले ही बैठते हैं। उनके आनेपर जगत् रहता नहीं है, जैसे प्रकाशके आनेपर अन्धकार नहीं रहता। कुछ न चाहो, अपने लिये कुछ न करो। प्रभुके होकर रहो, प्रभुको ही अपना मानो—बिना देखे-सुने अपना मान लो। मिला हुआ, देखा हुआ अनुभव कर लो कि अपना नहीं है, यह स्वीकार कर लो कि प्रभु अपना है। मिले हुएके द्वारा देखे हुएकी सेवा, यही एक मात्र कर्तव्य है। अचाह होनेसे जीवन्मुक्ति स्वतः आती है। अचाह होनेके लिये जो भी करना है, करो। प्रभुको अपना मान लो, भक्तिका आनन्द लो। सबको अपना मान लो, सेवाका आनन्द लो। अपने प्यारेकी हर चीज प्यारी, उसकी बदतमीजी भी प्यारी, प्रभुकी हर बात प्यारी। फिर सब प्यारे लगें, प्रभु प्यारे लगेंगे।

× × ×

राग और क्रोधसे मुक्त होनेपर स्मृति जगती है। याद करनेकी चीज नहीं है, आनेकी चीज है। स्मृतिका स्तर अहं है, क्रियाका स्तर इदं है। स्मृति अहंमें ही जगेगी। याद करानेका अभ्यास करना भुलानेकी बात है। जो एक बार करके दुबारा न करना पड़े, वही सार्थक है। विश्वास, सम्बन्ध एक ही बार होता है, सत्सङ्ग भी एक ही बार करना पड़ता है। सुने हुए प्रभुकी महिमा विश्वासपूर्वक स्वीकार कर लो। सत्सङ्ग अपने लिये, मिले हुएका सदुपयोग दूसरोंके लिये है। भगवान्को भुलानेवाला उनसे भिन्नका विश्वास, भिन्नकी महिमा और भिन्नका सम्बन्ध है। अखण्ड स्मृति, अगाध प्रियता जाग्रत् करनी है तो प्रभुकी महिमा, प्रभुका विश्वास, प्रभुका सम्बन्ध स्वीकार कर लो। जिससे छोड़ा नहीं जा सकता वही ईश्वरवादी है। जिसका और कोई है ही नहीं, वही ईश्वरवादी है। जिसे जगत्

नहीं चाहिये, जिसे ईश्वर नहीं चाहिये, उसे ईश्वर मिलता है। जो 'है' उसे जानने न जाननेसे क्या अन्तर पड़ा ? ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति होती है। ईश्वरवादी ईश्वरकी महिमामें रमता है। माँका स्वभाव है—बच्चेको प्यार करना। बच्चेका स्वभाव है माँकी गोदमें रहना। विचारपूर्वक जो किसीसे कोई आशा न करे, वही साधक है। जगत् हमारी किसी आशाको पूरा कर नहीं सकता। ईश्वरने मानवका निर्माण इसलिये किया कि मानव स्वाधीन होकर 'मुझे' 'अपना' कहे और प्रिय लगे। ईश्वरने

मानवको दीन-हीन नहीं बनाया। उसने हमें बनाया है इसलिये कि हम अचाह हो सकें, दूसरोंके काम आ सकें। रागरहित होनेपर ही हम स्वाधीन होंगे और क्रोधरहित होनेपर ही स्मृति जागेगी। 'किसीसे कोई आशा नहीं। प्रभुको अपना मानूँगा।' करना है तो सेवा करो और अपना मानना है तो प्रभुको मानो। हम किसीका बुरा नहीं चाहते, बुरा नहीं करते, बुरा नहीं मानते। हमारे रचयिताने सब कुछ देकर हमें यहाँ भेजा है। हम प्रभुके प्यारे और जगत्के दुलारे हैं।

श्रम-निवारण, शान्ति

(लेखक—दि० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

शरीर, वाणी, प्राण और मनको श्रम करनेसे थकावट आती है। शरीर कुछ भी मेहनत करता है, चलता है तो थकता है और उस थकावटको दूर करनेका उपाय करनेपर फिर शक्तिमान् हो जाता है। बोलनेसे भी थकावट आती है। इन दोनोंके काममें परोया हुआ प्राण थकता है, योगमार्गके सिवा प्राणकी कोई पृथक् क्रिया नहीं है; और मन विचार करनेसे थकता है।

थकावट मिटानेका उपाय निष्क्रियता है, जिससे दूसरे जीवन अथवा चेतनाकी प्राप्ति होती है। शरीर, मन और वाणी—एक दूसरेके साथ सम्बन्धित हैं। ये तीनों एक साथ निष्क्रिय हो जायँ तो श्रमनिवारणका सरस साधन बन जाता है। इन तीनोंकी निष्क्रियता गाढ़ी निद्रामें समाविष्ट है। निष्क्रियताके बाद स्फूर्ति आती हुई हमें दीखती है। अतएव प्रायः पशु-पक्षी या मनुष्यादि प्राणिमात्र निद्रासे नयी शक्ति प्राप्त करते हैं। श्रमसे थकावट आती है और शरीरके परमाणु घिसते हैं। उस घिसावकी पूर्ति खुराकसे होती है और थकावट निष्क्रियतासे दूर होती है।

निद्राके बिना भी शान्ति मिलती है। निद्रामें जैसे मन मूर्च्छित रहता है वैसे उसे मूर्च्छित न रखकर यदि मनकी गति चेतन आत्माकी ओर ले जायँ तो उससे प्राप्त होनेवाली शान्ति निद्राकी अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ होती है। इस प्रकारकी शान्तिसे जीवनको विशेष गति प्राप्त होती है।

सारे दिन श्रम करनेके बाद उस श्रमके निवारणके लिये निष्क्रियताकी साधना करे। एकान्तमें, खुली जगहमें,

शान्त स्थलमें, जहाँ पवनका मन्द-मन्द झोंका आ रहा हो, नदीके तटपर, समुद्रके किनारे, पर्वत, वन आदि ऐसी जगह जाय, जहाँ शान्ति विराजती हो। शरीरसे कोई क्रिया न करे, मनसे कुछ भी मनन न करे, वाणीसे कुछ न बोले, प्रकृतिके सौन्दर्यकी ओर दृष्टि रखे अथवा आँखें मूँद ले या निर्मल आकाशकी ओर दृष्टि डाले—देखता रहे।

इस समय कोई दूसरा काम न करे। मन यदि उस समय दिनमें हुए किसी कामका अथवा भविष्यके कार्यका विचार करे तो उसे रोक दे। मनको कोई विचार ही न करने दे और शरीर तथा वाणी भी निष्क्रिय रहें तो सर्वश्रेष्ठ लाभ है। थोड़ा समय भी इस प्रकार बितावे तो ऐसा लगेगा कि सारे दिनकी थकावट रफूचकर हो गयी।

दिनभर श्रम करनेके बाद खूब घूमना-फिरना, खेलना, बातें करना, ये सब ऊपर लिखे हुए शान्तिके साधनोंसे निचले दर्जेके साधन हैं। दूरतक घूमने-फिरनेमें, बातें करनेमें, खेलनेमें मन, वाणी और शरीर कुछ-न-कुछ क्रियाशील रहते ही हैं। केवल अन्तर यही है कि इनमें श्रम कम होता है। किंतु इनमें चिन्ता न होनेके कारण ही श्रम कम होता है। यदि इनमें भी जीतनेकी, सरसता लानेकी चेष्टा हो तो ये भी शान्तिके बदले विशेष अशान्ति प्रदान करते हैं, जैसे सरोवर-का जल दिनभरके उपयोगसे मलिन हो जाता है और रातमें जब एक ओर उपयोग नहीं होता और दूसरी ओर पवनकी लहर चलती है तो वही जल निर्मल हो जाता है—मलिनता दूर हो जाती है। इसी प्रकार शरीर, प्राण और

मन भी निष्क्रियतासे अथवा क्रियाकी लघुता होनेपर शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त करते हैं ।

शरीर पञ्चमहाभूतोंसे बना है । स्थूल शरीरसे लेकर सूक्ष्म बुद्धितक सभी पञ्चभूतोंसे बने हैं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँचों तत्त्वोंमें निचले तत्त्व ऊपरके तत्त्वको दूषित करते हैं और ऊपरके तत्त्व निचले तत्त्वको निर्मल करते हैं । पृथिवी जलको दूषित करती है, जैसे मटमैला पानी । जल तेज अर्थात् अग्निको मलिन करता है, जैसे धूम । उसी अग्निको वायु निर्मल करता है, जैसे पवनसे अग्नि प्रदीप्त होती है । उसी प्रकार वायु अग्निसे उष्ण होता है, जलसे ठंडा होता है । पृथ्वीसे मिलकर वायु धूसरित होता है और आकाशसे निर्मल होता है । जबतक एक तत्त्व दूसरेसे दूषित नहीं होता, तबतक वह निर्मल ही रहता है । मन, शरीर और प्राण भी दूसरेसे दूषित न हों तो निर्मल ही रहेंगे ।

इस कारण एक ओर थकावट दूर करनेके लिये निष्क्रियताका साधन करे और दूसरी ओर उपर्युक्त तत्त्वोंका सेवन करे ।

पार्थिव तत्त्वसे दोष आया हो तो जलका सेवन करे । जल दूषित हो तो अग्नितत्त्वसे तपावे और शुद्ध करे । इसी प्रकार अपने शरीर, प्राण और मनको निर्मल करे । शरीरकी निष्क्रियता तो सहज ही सिद्ध हो सकती है । वाणीकी निष्क्रियता अर्थात् मौन बहुत ही लाभदायक है । परंतु वाणीको मौन करके स्लेटपर या कागजपर लिखना, इशारा करना अथवा दूसरी चेष्टाएँ करना—इनसे मौनका ठीक-ठीक लाभ प्राप्त नहीं होता ।

शरीर, वाणी और मन—इन तीनोंमें मनको निष्क्रिय रखना सबसे श्रेष्ठ है । इसकी साधनाके लिये जब-जब फुरसत मिले तब-तब नीचे लिखी क्रिया करे । कम-से-कम सबेरे-शाम तो करे ही । शरीरसे सुखपूर्वक आसनसे बैठ जाय, वाणीको बंद कर दे, आँखें मूँद ले और मनके ऊपर पहरा रखे और ऐसा प्रयत्न करे कि मन निष्क्रिय बने । यदि मन बिना विचारे न रहे तो ऐसा ध्यान करे कि परमात्मा सचराचरमें व्यापक है और सत्य है, शरीरके भीतर और बाहर सर्वत्र यही परमात्मा व्याप्त हो रहा है । इसके साथ ही यह भी ध्यान रखे कि मन जगत्-सम्बन्धी किसी भी बातका चिन्तन न करे । यह सर्वश्रेष्ठ क्रिया है । सब तत्त्वोंमें आकाश सर्व-

श्रेष्ठ है । आकाशके सेवनसे दूसरी सारी मलिनताएँ दूर होती हैं । परंतु इस आकाशको दूसरे सब तत्त्वोंकी मलिनतासे मुक्त करके पवित्र करनेवाला, सत्ताको स्फूर्ति देनेवाला परमतत्त्व परमात्मा है । वह परमात्मा हमारे शरीर, मन और बुद्धि आदिके भीतर-बाहर सर्वत्र है । इनको ताजगी प्रदान करके अद्भुत पवित्रता, शान्ति और आनन्द तथा शक्ति प्रदान करता है ।

इस क्रियाको करते समय ऐसा आसन लगाना चाहिये जिसपर सुखपूर्वक बैठ जा सके । शान्त और एकान्त जगह होनी चाहिये, जहाँ किसी प्रकारका विक्षेप न हो । शरीर सीधा रहे, यदि वैसा बैठनेमें असुविधा जान पड़े तो जैसे सुविधाजनक हो वैसे ही बैठे । परंतु आसनको बार-बार फेर-बदल न करे । पैरको इधर-उधर फेर-बदल न करे ।

इस क्रियासे प्राण शान्त और निर्मल होता है । मन शान्त रहता है और शरीरमें शक्तिका संचार होता है । इस लोकका यह अमृत है ।

इस अभ्यासको रोज बढ़ाते जाय । पहले महीनेमें एक घंटे अभ्यास करे तो दूसरे महीनेमें पाँच मिनट बढ़ा दे, तीसरे महीने पाँच मिनट और बढ़ावे । इस प्रकार धीरे-धीरे साधन बढ़ावे । उतावली न करे । नाक न दाबे । अङ्गोंको शिथिल रखे । किसी इन्द्रिय या प्राणके ऊपर दबाव न डाले । यह क्रिया ही ऐसी है कि इसमें सब नियमोंका समावेश हो जाता है ।

यदि ऊपर लिखे अनुसार परमात्माका ध्यान न हो सके तो ॐ, हरिः ॐ, राम, कृष्ण आदि नामोंका जप बिना ओष्ठ हिलाये मनसे इसी स्थितिमें करे । इस प्रकारका जप श्रेष्ठ जप होता है । यह क्रिया करने योग्य है । थकावटको दूर करनेवाली है तथा शक्ति प्रदान करनेवाली है ।

यह मनकी निष्क्रियताकी साधना इच्छा और प्रयत्नके अनुसार मनकी एकाग्रताको पूर्ण करनेवाला कल्पवृक्ष है । इस प्रकारके अभ्याससे अभ्यासके अतिरिक्त समयमें व्यावहारिक काम करते समय भी मन बिना प्रयत्नके ही शान्त, चिन्तारहित और निष्क्रिय रहता है । व्यग्र और उतावला न होकर धैर्यपूर्वक इस साधनाको करता रहे । जप, भक्ति, भजन, पाठ, पूजा अथवा दूसरे जितने साधन हैं, उनकी अपेक्षा इस साधनसे मनकी निष्क्रियता बहुत आसानीसे सिद्ध हो जाती है । इतना ही नहीं, बल्कि मनको निष्क्रिय करने, आशाहीन

करनेका यह एक छोटा साधन है। इस साधनको करते समय घड़ी रखनी चाहिये। अथवा मधुर अलार्म घड़ी रखे।

आँखें मूँदकर बैठनेसे अन्धकार-सा लगता है। उस अन्धकारमें चित्तको रोक रखना, उसकी ओर इसे लगाना और दूसरे तमाम विचारोंका त्याग करना। इस अभ्यासको खूब बढ़ावे। मनकी निष्क्रियता ही सबसे सरस थकावटको दूर करने (श्रम-निवारण) का उपाय है। परंतु इसमें उतावली न करे, हठ न करे, धीरे-धीरे साधन बढ़ावे। भीतर तेज, बादल, बिजली, चन्द्र, सूर्य-जैसी अनुभूति होगी, उससे लालचमें न पड़े, यह जो कुछ दीखता है परमात्मा नहीं है।

परमात्मा सबसे परे है। यह क्रिया श्रम-निवारणके लिये लिखी गयी है, परंतु मनको निष्क्रिय करनेका श्रम-निवारण गौण फल है और परमपदकी प्राप्ति मुख्य है। मनके निष्क्रिय होनेपर चित्तको जगत्के विचारसे हटा लेनेके बाद उसके लिये कोई आलम्बन चाहिये। वह आलम्बन परमात्मा है। उसमें चित्तको लगाकर धीरे-धीरे तन्मयताकी साधना करनेपर अद्भुत शान्ति प्राप्त होगी। इसमें जो दृश्य दीख पड़ते हैं, वे चित्तकी वृत्तियाँ हैं, परमात्मा चन्द्र और सूर्य-जैसा नहीं है, वह तो कल्पनामें नहीं आ सकता, न दीख ही सकता है, जो कुछ दीखता है वह चित्तकी कल्पना है। बाकी, वस्तुतः सत्य नहीं है। देवता मूर्तिमन्त साकार हैं, मनकी निष्क्रियतामें शंकर, विष्णु आदि देवताओंका ध्यान करे तो वे दिखलायी देते हैं, पर इससे भी आगे बढ़नेकी चेष्टा करे। इस जीवनमें श्रम शरीर, मन, प्राण और वाणीका है, परंतु ये सारे श्रम जीवात्माके हैं; क्योंकि इनके साथ वही जन्म-जन्मान्तरके चक्रमें पड़ा है। इस लेखमें मैंने वह युक्ति बतायी है जिसके द्वारा वर्तमान श्रमको तथा जन्म-जन्मान्तरके श्रमको दूर कर सकते हैं, सदाके लिये शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

इसमें गुरथियाँ आ सकती हैं; कठिनाइयाँ पड़ सकती हैं, वैसी दशामें पूछ-ताछ कर लेनी चाहिये। इसमें हठ, आग्रह या उतावलापन करनेसे व्याधि और मनकी व्यग्रता उत्पन्न होगी। जैसे-जैसे क्रिया करनेके लिये लिखा है, वैसे धैर्यपूर्वक करते रहनेसे विघ्न नहीं आयेगा।

इसमें विशेषतः ध्यान देनेकी बातें ये हैं कि अहंकार कभी न करे, खण्डन-मण्डनमें न पड़े तथा आशीर्वाद या शाप देनेके चक्रमें न पड़े और अनुभवकी बातें सबसे कहता न फिरे। परमात्माका आश्रय, भक्ति, दया और दैन्यका

त्याग न करे। नहीं तो, अधःपतन हो जायगा। शान्ति रखे, बहुत धीरे-धीरे अखण्ड प्रयत्नके द्वारा आगे बढ़ता जाय।

मन जबतक निश्चिन्त न हो जाय, अखण्ड निर्विकार न हो जाय, जबतक भय, उद्वेग और क्रोध न मिट जाय और जबतक अखण्ड शान्ति न मिल जाय, तबतक प्रयत्न करता ही रहे। दिनमें २-३ समय मन, वाणी तथा कायाको निर्विचार, निर्विकार तथा निष्क्रिय रखनेके अभ्याससे जो परम शान्ति मोक्षके लिये होगी और उसमें भोगेच्छाकी बिल्कुल ही वासना न होगी तो मनमें अखण्ड शान्ति प्रकट होगी। इस अखण्ड शान्तिसे जागते-सोते, घूमते-फिरते और काम करते भी मन शान्त रहता है। इसको हृदयङ्गम करानेके लिये सारी बातें पुनः संक्षेपमें कही जाती हैं।

(१) प्राकृतिक सौन्दर्यके बीच एकान्त और शान्त जगहमें जाकर निर्विचार और निष्क्रिय शान्तभावमें रोज बैठे।

(२) एकान्त स्थानमें स्थिर आसन करके आँखें मूँदकर निर्विचार बैठनेकी अवस्थामें बैठकर या तो—

(अ) ॐ, हरिः ॐ, राम, कृष्ण—जिसमें रुचि हो वह नाम मनसे, बिना ओष्ठ हिलाये जपता रहे और यह ध्यान रखे कि मन दूसरा विचार न करने पावे। अथवा,

(ब) आँखें मूँदनेसे जो दीखे, उसमें मनको लीन करे और सावधान रहे कि मन कोई दूसरा विचार न करने पावे।

(३) चित्त और शरीर विकारी हैं, अतएव पाँच तत्त्वोंमेंसे ऊपरके तत्त्वोंका सेवन करके शरीर और मनको शुद्ध करता रहे। जलसे पृथिवी-तत्त्व शुद्ध होता है; स्नान-पान, मुख और पैरको धोना आदि क्रिया करे। जलतत्त्व अग्निसे शुद्ध होता है, अतएव प्रातःकालके सूर्यका उधाड़े शरीर सेवन जबतक सहन हो तबतक करे। अग्नि-तत्त्व वायुसे शुद्ध होता है। इसके लिये शुद्ध और निर्मल हवामें घूमे-फिरे और बैठे। वायुतत्त्व आकाशसे शुद्ध होता है। इसके लिये एकान्त—शान्त जगहका सेवन करे। आकाशकी ओर दृष्टि रखे। सारे तत्त्व परमात्मासे शुद्ध होते हैं। इसलिये सचराचर जगत्-में परमात्मा व्यापक है, इसका अनुभव करे। जैसे जलमें मग्न घड़ेके अंदर-बाहर जल ही होता है, उसी प्रकार हमारा शरीर, मन, प्राण, बुद्धि और आत्मा, सब परमात्मालूपी महासागरमें डूबे हुए हैं और उस परमात्माके भीतरसे शक्ति,

स्फूर्ति, ज्ञान-विज्ञान, सुख और आनन्द बेहद प्राप्त हो रहे हैं, हम परमात्मारूप हो रहे हैं, ऐसी भावनासे निर्विचार-अवस्थामें बैठकर विचार करे।

(४) निर्विचार मनकी अवस्थामें आगे बढ़ते-बढ़ते अन्तमें 'मैं ब्रह्म हूँ', 'सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ'—इस प्रकारकी भावना मनमें करे। इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करे। उतावला न हो और इस बतलाये हुए तरीकेको छोड़कर अपनी बुद्धिसे और कुछ न करे। इस मार्गमें चञ्चलतावश होकर बर्तनेसे जोखिम है, रोग होता है, घोखा खाना पड़ता है, कहे अनुसार बराबर समझकर आचरण करनेसे अपार सुख होता है; न समझमें आवे तो जानकार पुरुषसे

पूछना चाहिये, बिना समझे आचरण नहीं करना चाहिये।

नित्य उद्यम करता जाय। अधीरतासे प्रवृत्त न हो; शान्ति-मयी प्रवृत्ति हो और परमात्माकी भक्ति कभी न छोड़े।

परमात्माका भजन, उनका आलम्बन इस भवसागरसे तारनेवाला है। अपने परिश्रमसे कुछ नहीं बनता। इसलिये परमात्माकी अनन्य शरण ले। जीवात्माके भवाटवीमें भ्रमण करनेमें जो श्रम होता है, इस देहसे इस जीवनमें उस श्रमको निवारण करनेका उपाय इस लेखमें बताया गया है। इसका पालन करें और संसारके बन्धनसे छूटकर परम तत्त्वको प्राप्त करें।

‘हरिः ॐ तत्सत्’

ब्राह्मणके लिये त्रिसंध्या परम कर्तव्य

(लेखक—महात्मा श्रीसीताराम ओंकारनाथजी महाराज)

ब्राह्मणमात्रके लिये त्रिसंध्या करना कर्तव्य है। ब्राह्मण-देह प्राप्त करके जो संध्या नहीं करता, उसके समान अभागा जगत्में दूसरा कोई नहीं है।

संध्या येन न विज्ञाता संध्या नैवाप्युपासिता।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥

(अग्निपुराण)

जो ब्राह्मण संध्या नहीं जानता, संध्योपासना नहीं करता, वह जीवित-कालमें शूद्र होता है और मरनेपर कुत्तेका जन्म पाता है।

जो प्रातः-संध्या, सायं-संध्या नहीं करते, उनको ब्राह्मणोचित कार्यसे बहिष्कृत कर देना चाहिये।

अध्यास्ते यस्तु न संध्यां ब्राह्मणो हि विशेषतः।
स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चाभिजायते ॥

(दक्षस्मृति)

जो संध्या नहीं करता—विशेष करके ब्राह्मण, वह जीवितावस्थामें शूद्र होता है और मरनेपर कुत्ता होता है।

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलभाग भवेत् ॥

(दक्षस्मृति)

संध्याहीन ब्राह्मण नित्य अपवित्र, सब कर्मानुष्ठानमें अयोग्य होता है, वह अन्य जो कुछ करता है उसका फलभागी नहीं होता।

अनागतास्तु ये पूर्वामतीत्य ये तु पश्चिमाम्।
विप्राः संध्यां न तिष्ठन्ति वृषलास्तु उदाहृताः ॥

(यमस्मृति)

जो लोग प्रातः और सायं-संध्या नहीं करते, वे शूद्र नामसे पुकारे जाते हैं।

न तिष्ठति तु यः पूर्वा नापि संध्यां तु पश्चिमाम्।
स शूद्रैस्तु समो लोके सर्वधर्मविवर्जितः ॥

(कूर्मपुराण)

जो प्रातः और सायं-संध्या नहीं करता, वह सर्व-धर्मोंसे वर्जित पुरुष शूद्रके समान हैं।

संध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥

(यमस्मृति)

जो दृढ़व्रती ब्राह्मण संध्योपासना करते हैं, वे पूर्णतः पापरहित होकर सनातन ब्रह्मलोकको गमन करते हैं।

अनृतं मद्यगन्धं च दिवामैथुनमेव च ।
पुनाति वृषलस्यान्नं वहिः संध्या ह्युपासिता ॥
(यमस्मृति)

मिथ्या, मद्यगन्ध, दिवामैथुन और वृषलान्न-भोजनसे जो पाप होते हैं, संध्योपासना इन पापोंसे पवित्र कर देती है ।

रात या दिनमें अज्ञानसे जो पाप हो जाते हैं, त्रिकाल संध्या करनेपर वे सारे पाप विशेषरूपसे नाशको प्राप्त होते हैं ।

(याज्ञवल्क्य०)

सायं और प्रातः-काल शुचि होकर बाहर जाकर संध्या करे ।

(देवल०)

सब अवस्थाओंमें जो ब्राह्मण संध्योपासनपरायण होता है, वह दूसरे जन्ममें भी ब्राह्मणकुलमें जन्म लेता है ।

(योगी याज्ञवल्क्य)

और भी—

संध्या तूपासिता येन तेन विष्णुरुपासितः ।

दीर्घमायुः स विन्देत सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

जिसने संध्योपासना की, उसकी विष्णु-उपासना हो जाती है । वह सब पापोंसे मुक्त होकर दीर्घ आयु प्राप्त करता है ।

और भी—

जो प्रातः और सायंकालमें नक्षत्रके सहित संध्याकी उपासना करते हैं, (अर्थात् नक्षत्र रहते-रहते प्रातः-संध्या आरम्भ करते हैं और सूर्यास्तके चौबीस मिनट बादतक बैठकर ताराओंके उदय-पर्यन्त संध्या करते हैं,) पवित्रकारिणी ज्योतिर्मयी लोकमाता गायत्रीका जप करते हैं, वे ब्राह्मण देवी गायत्रीके द्वारा पवित्र और पापमुक्त हो जाते हैं । वे यदि ससागरा पृथिवीको प्रतिग्रह करें तो भी उससे अवसादको प्राप्त नहीं होंगे ।

प्रतिग्रहका अर्थ है दान लेना । किसीसे कुछ दान

लेनेपर उसके साथ-साथ दाताका पाप भी लेना पड़ता है । प्रतिग्रहके द्वारा तपस्या, तेज और यशका नाश हो जाता है । परंतु गायत्री-जप करनेवाले ब्राह्मणमें इतनी शक्ति होती है कि ससागरा पृथिवीका दान लेनेपर भी उसको कोई पाप नहीं होता ।

प्रातः और सायंकालमें जो शुद्धचेता द्विज संध्योपासना करते हैं, वेदमाता पवित्रकारिणी गायत्रीका जप करते हैं, उसकी कृपासे जप करनेवालोंका सारा पाप नष्ट हो जाता है । यदि वे ससागरा पृथिवीको दान लें तथापि अवसादग्रस्त नहीं होते । उनके ऊपर दारुण ग्रह प्रसन्न हो जाते हैं । वे जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ-वहाँ भयानक मांसभोजी, घोररूप महाकाय, राक्षस भी उनका अनिष्ट नहीं कर सकते । संसारमें वेद-व्रत आचरण करनेवाले द्विज जो व्रताचरणहीन, उत्पथगामी मनुष्यके लिये त्रिसंध्योपासना करते हैं, उनका यह महाव्रत अक्षुण्ण होता है अर्थात् नित्य संध्या, गायत्री-जपके द्वारा जगत्का महाकल्याण होता है ।

और भी—

जो संयत और शुचि होकर प्रातः और सायंकालमें गायत्रीकी उपासना करते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और आगे पाप नहीं लगते । पापमुक्त मनुष्य इस प्रकार गायत्रीकी उपासनासे विशेषरूपसे पापोंको दग्ध कर देता है, अर्थात् वह पूर्णतः निष्पाप हो जाता है ।

(अग्निपुराण)

बाहर अनाच्छादित स्थानमें संध्या करनेपर दसगुना, गोष्ठमें, पर्वतपर, प्रसन्नवृणादिमें और ख्यात तीर्थमें शत-गुना तथा गङ्गाजलमें संध्या करनेपर सौगुना फल होता है ।

(व्यास)

घरमें संध्या प्राकृत होती है । गोष्ठमें शतगुना, नदियोंमें लाख गुना और शिवके पास संध्या करनेसे अनन्त गुना फल होता है ।

(शातातप)

संधिकालमें (अर्थात् रातके बीतने और दिनके आगमनमें तथा दिनके बीतने और रातके आगमनमें)— सूर्यदेवके उदयके पहले प्रातःसंध्या और सूर्यास्तके पूर्व सायंसंध्या तथा मध्याह्नकालमें मध्याह्न-संध्या होती है । ये तीनों संध्या प्रतिदिन द्विजोंके लिये अवश्य-कर्तव्य है ।

(योगी याज्ञवल्क्य)

नक्षत्रके सहित प्रातःसंध्या और जब सूर्य अर्द्ध-अस्तमित हो उस समय सायं-संध्या विधिपूर्वक करनी चाहिये ।

(संवर्त)

प्रातः-संध्या नक्षत्रोंके रहते-रहते प्रारम्भ करे और जबतक सूर्योदय न हो तबतक गायत्री-जप करता रहे ।

(नृसिंहपुराण)

ऋषिगण दीर्घकालतक संध्या करते थे । इससे

दीर्घायु, प्रजा, यश, कीर्ति और ब्रह्मतेज प्राप्त करनेमें समर्थ होते थे ।

(मनु०)

जो सतत स्नानशील है, संध्या-लोप नहीं करता । उसके पास उसी प्रकार पाप नहीं जाते, जिस प्रकार कि गरुड़के पास साँप नहीं जाते हैं ।

(छान्दोग्य परिशिष्टमें कात्यायन)

और भी—

एतत् संध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यदधिष्ठितम् ।

यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥

जिसमें ब्राह्मणत्व अधिष्ठित है, वह त्रिसंध्या विशेष-रूपसे कही गयी, जिसका इसमें आदरभाव नहीं, वह ब्राह्मण नहीं है ।

जय सीताराम

लोभ रावण और शान्ति सीता

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसीजी)

त्यागका मार्ग कठिनाईका मार्ग है । इससे घबराने की आवश्यकता नहीं । कठिनाईको पार करो । साहससे काम लो । नीतिकारोंने कहा है कि भयसे भय बढ़ता है । भयकी छातीको चीरकर चले जाओ, फिर कोई भय नहीं । ठीक इसी प्रकार कठिनाइयोंसे घबराओगे तो वे बढ़ेंगी । उनका सामना करो, वे मिट जायेंगी । यदि राम समुद्रसे घबरा जाते, अपनी थोड़ी-सी सेना देखकर निराश हो जाते तो उन्हें सीता कहाँसे मिलती ? वे घबराये नहीं । उन्होंने साहससे काम लिया । अपने छोटे साधनोंके उपरान्त भी रावणको समस्त दुराशाओंके साथ जमींका पूत बना दिया । एक कविने कहा है—

विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि-
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः ।
तथाप्येको रामः सकलमवधीद्राक्षसकुलं
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥

महान् व्यक्तियोंकी क्रिया-सिद्धि उनके सत्त्व, साहस एवं व्यक्तित्वमें रहती है । वह बाहरी उपकरणोंमें नहीं मिलती । आज आपकी प्यारी सखी शान्ति सुदूर टापू लंकामें अपहृत हो चुकी है । बीचमें भौतिकताका विशालकाय समुद्र पड़ा है । दुनियाँके सबसे बड़े शत्रु लोभ-रावणको मारकर आपको अपनी शान्ति-सीताको लाना है । डरो मत ! घबराओ नहीं ! हिम्मत रक्खो । साहस बढोरो । युवक जहाँ गोलियोंकी बौछारमें सीना तानकर खड़े हो जाते हैं, वहाँ इसमें घबराहटकी क्या बात है ?

ईश-स्तवन

(लेखक—डॉ० श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम० ए०)

‘सबसे बड़ा धर्म क्या है ?’ ऐसा युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मपितामहने कहा—

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।

यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चयन्नरः सदा ॥

(महाभारतः अनुशासनपर्व २४६।८)

‘मुझे तो यही लगता है कि स्तवोंके द्वारा भगवान् विष्णुकी सदा आराधना करना सबसे बड़ा धर्म है ।’ पुण्य-कार्य वही है, जो संसारकी आसक्तिको मिटा दे और विष्णुमें आसक्तिको प्रगाढ़ कर दे । भगवान् विष्णुमें असंख्य सद्गुण हैं । जब हम विष्णुका चिन्तन करते हैं या उनके नामका स्मरण करते हैं तब यह सम्भव नहीं है कि हम उनके सभी गुणोंका स्मरण कर सकें । जब हम किसी स्तवको पढ़ते हैं या पाठ करते हैं, उनके कुछ प्रमुख सद्गुण हमारे मानस-पटलपर अङ्कित हो जाते हैं । इस रीतिसे भगवान् विष्णुके साथ हमारा सम्बन्ध और प्रगाढ़ हो जाता है ।

वस्तुतः विष्णुके गुण अद्भुत हैं । वे सम्पूर्ण विश्वके स्वामी हैं । वे स्वर्गके समस्त देवताओंमें सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न हैं । उनका कोई अन्त नहीं है । अनादि-कालसे उनका अस्तित्व है । उनमेंसे सभी वस्तुओंका उद्भव हुआ है । उनका अस्तित्व सर्वदा रहेगा । सभी वस्तुएँ उनमें समाकर विलीन हो जायँगी । सभी चेतन प्राणियोंमें वे सर्वाधिक ऐश्वर्यवान् हैं । विश्व-स्रष्टा ब्रह्मापर वे दयालु हैं । वैदिक संस्कृतिके संरक्षक ब्राह्मणोंपर वे कृपा करते हैं । तपस्वियोंकी वे रक्षा करते हैं । वेदकी, जो सभी प्रकारके ज्ञानके और हितकारी विधि-विधानके आगार हैं, वे सुरक्षा करते हैं । वे सभी हितकारी विधि-विधानोंके ज्ञाता हैं । उत्तम कार्य करनेवालोंकी वे रक्षा करते हैं और उनको प्रोत्साहन देते हैं । वे ही श्रेष्ठतम प्राप्तव्य वस्तु हैं । वे ही सर्वश्रेष्ठ सत्ता हैं । सभी तरहके प्रकाशके वे ही स्रोत

हैं । वे ही शक्तिकेन्द्र हैं, सबको शक्ति देते हैं, जिससे सूर्य विश्वको प्रकाशित करता है । उनकी ज्योतिसे ज्योतित होकर ही सूर्य, चन्द्रमा और तारागण चमकते हैं । वे सम्पूर्ण विश्वके नियामक हैं । वे सभी जीवोंके घट-घटमें वास करते हैं और उनका नियमन करते हैं । उनके भयसे वायु बहती है, सूर्य उगता है । अग्नि, इन्द्र और यम सभी उनके भयसे अपना-अपना कार्य ठीक प्रकारसे सम्पन्न करते हैं । उनकी शक्ति और सम्पत्ति असीम है । वे सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ हैं । उनका चिन्तन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता । उनसे बढ़कर पवित्र करनेवाला कोई है ही नहीं । उनका ध्यान करनेसे, उनके श्रीविग्रहका दर्शन करनेसे, उनके नामका गायन करनेसे, उनसे प्रार्थना करनेसे, उनका आराधन करनेसे, उनका स्मरण करनेसे, उनको प्रणाम करनेसे पापी अपने सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है । उनका चिन्तन करनेसे कोई भी व्यक्ति सौन्दर्य, स्वास्थ्य, सुख, सम्पत्ति और मुक्तिको प्राप्त कर सकता है । उनका चिन्तन सारे कष्टोंसे मुक्ति दिलाने-वाला है । क्या स्नान करते समय, क्या अन्य समय, सर्वदा उनका चिन्तन करना चाहिये । इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । उनके चिन्तनसे बड़ा-से-बड़ा पापी भी धर्मात्मा बन जाता है । सारे शास्त्रोंका सार यही है कि नारायणका चिन्तन करना चाहिये । श्रीकृष्णका स्मरण ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है, जो समस्त पापोंसे मुक्त कर देता है । सभी तपोंमें यह तप सबसे बड़ा है ।

कलकत्ताके समीप गङ्गाके किनारे हालि-शहर नामका एक नगर है, जहाँ श्रीरामप्रसाद सेनका १८ वीं शताब्दीमें जन्म हुआ था । ये माँ कालीके परम आराधक थे, माँको सर्वोच्च शक्ति मानते थे । उन्होंने माँ कालीके गुणगानमें बड़े सुन्दर पदोंकी रचना की है । पदगानके रूपमें ही उन्होंने माँ कालीकी आराधना

की है। एक बार जब वे अपने घरका घेरा ठीक कर रहे थे और साथ ही माँके गीत गा रहे थे, उनकी पुत्रीके रूपमें आकर माँ कालीने उनके कार्यमें सहयोग दिया। उनके गीत सरल हैं, पर साथ ही अत्यधिक भक्ति-भावसे परिपूर्ण हैं। बंगालके घर-घरमें वे गाये जाते हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण परमहंसको भी प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया है। श्रीरामकृष्ण परमहंस कहा करते थे—‘माँ, तुमने रामप्रसादको दर्शन दिया

है, तुम मुझे अपना दर्शन क्यों नहीं देती ?’ यद्यपि श्रीशंकराचार्य ज्ञान-योगके समर्थक और प्रचारक थे, फिर भी उनके स्तवन भक्ति-भावसे इतने अधिक आप्लावित हैं कि उनको पढ़कर हरएक मन्त्र-मुग्ध हो जाता है। चाहे कोई ज्ञान-योगका अथवा भक्ति-योगका साधक हो, ईश्वर-प्राप्तिके प्रयत्नमें उसको ईश-स्तवनका पाठ और उनके पदोंका गायन सबसे बड़ा सहायक है।

मधुर

श्रीराधाके साथ प्रियतम श्रीकृष्ण एक दिन स्वरूप-तत्त्वकी चर्चा करते हुए उनसे बोले—

प्रिये ! लखौ तुम सर्व-बिलच्छन
अपनौ रूप अनूप ।
दोउ अनादि बिहरत बिलसत हम
नव पद्धति नव रूप ॥

प्रिये ! तुम सबसे विलक्षण हमारे अनुपमेय रूपकी ओर देखो। हम दोनों अनादिकालसे नयी-नयी पद्धति और नये-नये रूपोंमें विहार-विलास कर रहे हैं।

हम न रमन-रमनी जथार्थ में
न स्वकीय परकीय ।
प्रकृति पुरुष हू नहीं, निरत नित
सुचि क्रीड़ा कमनीय ॥

परंतु हम न तो यथार्थमें रमण-रमणी हैं, न हमारे अंदर स्वकीय-परकीय-भाव ही है, हम प्रकृति-पुरुष भी नहीं हैं तथापि नित्य पवित्र मधुर मनोहर क्रीड़ामें रत हैं।

निराकार साकार न हम हैं
निर्विशेष सविशेष ।
नहीं सगुन निरगुन हम दोऊ
नहिं शेषी नहिं शेष ॥

न तो हम दोनों आकाररहित हैं, न भौतिक आकारयुक्त ही हैं। न हम निर्विशेष हैं, न सविशेष

हैं। न हम दोनों भौतिक गुणोंवाले हैं, न स्वरूपभूत गुणोंसे रहित ही हैं और हम न शेषी हैं तथा न शेष हैं।

माया ब्रह्म न मायामय हम
नहीं व्यक्त-अव्यक्त ।
प्रेम पूर्णतम प्रेमरस-रसिक
रसमय रस-आसक्त ॥

हम दोनों न माया तथा ब्रह्म हैं, न मायामय (मायिक रूपवाले) हैं। न भौतिक रूपमें व्यक्त हैं और सच्चिन्मय-स्वरूपमें अव्यक्त हैं। हम हैं पूर्णतम प्रेम, प्रेम-रसके रसिक, दिव्य रसमय और दिव्य रससे आसक्त।

नित नव बिलसत मधुर हमारो
रूप अनन्त अपार ।
बढ़त नित्य निष्काम कामना
नित्य नवीन विहार ॥

हम परिपूर्णतम प्रेमरूपका यह हमारा मधुर रूप अनन्त और अपार रूपमें नित्य नया विकासको प्राप्त हो रहा है। प्रतिपल ही निष्काम (स्वसुख-वासना-हीन लौकिक मनसे शून्य) कामना बढ़ती रहती है और नित्य नवीन वर्धनशील विहार चलता रहता है।

द्विभुज रूप लावण्य ललित अति
अतुल अनिर्वचनीय ।
प्रेममूर्ति सुचि रूप-सुधा-
सौंदर्य नित्य रमनीय ॥

हमारे इस द्विभुज रूपका अत्यन्त ललित लावण्य सर्वथा अतुलनीय है और अनिर्वचनीय है। हम, जो मूर्तिमान् प्रेम हैं या राधामाधवके रूपमें प्रेम ही प्रकट हैं—उस प्रेममूर्तिका यह पवित्र रूपामृत-सौन्दर्य नित्य ही रमणीय है।

प्रेम आत्मा, प्रेम बुद्धि-मन,
इन्द्रिय पूरन प्रेम।
स्थूल-सूक्ष्म-कारन विरहित नित
देहहु चिन्मय प्रेम ॥

हमारा आत्मा भी प्रेम है, प्रेम ही मन बना है, प्रेम ही बुद्धि बना है, पूर्ण प्रेम ही सब इन्द्रियोंके रूपमें प्रकट है और हमारा यह देह भी स्थूल-सूक्ष्म-कारण इन त्रिविध भेदोंसे रहित नित्य चिन्मय प्रेम ही है।

लीला सकल प्रेमरसरूपा
नित नव प्रेमानन्द।
नित्य अबाध अपरिमित नव नव
लीला गति स्वच्छन्द ॥

हमारी सारी लीलाएँ भी प्रेमरसरूपा ही हैं और हमारा नित्य नवीन आनन्द भी प्रेमानन्द ही है। हमारी यह बाधारहित असीम लीला नयी-नयी चालसे स्वच्छन्दतापूर्वक चल रही है।

सुर-मुनि समुक्षि न पाये था कौं
गये जतन करि हार।
नित्य अचित्यानन्त-अनि-
र्वचनीय विचित्र विहार ॥

हमारे इस नित्य अनन्त अचिन्त्य अनिर्वचनीय लीला-विहारका ज्ञान देवता तथा ऋषि-मुनियोंको भी प्राप्त नहीं हो सका। वे भी प्रयत्न करके हार गये।

कबहुँक हों यहि रहनि रहौंगो

(लेखक—श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी एम० ए०, बी० एस्-सी०, पी०-एच्० डी०, डी०लिट०)

ज्ञान-प्राप्तिकी इच्छा—इस दृश्यमान जगत्में दो कार्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं—आनन्दकी खोज तथा उद्गम-स्थलकी ओर प्रयाण। इन दोनोंकी उपलब्धिके लिये प्रयत्न अपेक्षित हैं। तद्विषयक मार्गका निर्देशन ज्ञानका विषय है, जो साधन-साध्य है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

(गीता ४।३४)

अज्ञान एवं तज्जन्य दुःखसे मुक्ति पानेके लिये प्रयत्न-शीलता मानवके ज्ञानस्वरूप होनेका स्वयं प्रमाण है।

मार्ग-निर्देशनका कार्य शत-सहस्र वर्षोंसे होता आया है। गीताकारने विभिन्न वृत्तियोंपर आधारित अठारह प्रकारके योगका निरूपण करके इनका सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करते हुए ज्ञानकी उपलब्धिके हेतु अनेकानेक साधनोंकी प्रतिष्ठा की है। महात्मा बुद्धने दुःखका कारण तृष्णा और दुःखसे निवृत्ति एवं शान्ति-प्राप्तिका प्रतिपादन दुःख-निवारण

करनेवाले अष्टसूत्र मार्गके विधानद्वारा किया है^१। भारतवर्षके आर्यऋषियोंद्वारा प्रतिपादित पुरुषार्थचतुष्टय^२ एवं साधन-चतुष्टयने इस विषयको प्रायः सर्वाङ्गीण पूर्णता प्रदान कर दी है।

जोन बनियन (John Bunyan) की Pilgrim's Progress मिल्टनद्वारा लिखित गुलीवरकी यात्राएँ Guliver's Travels आदि 'साक्षेपता' तथा 'पदार्थ

१. सत्य सत्य, सत्य प्रयोजन, सत्य सम्भाषण, सत्य व्यवहार, सत्य विचार, आत्म-शुद्धि, एकान्त और आत्मानन्द।

व्यवहारकी सुविधाके लिये इन्हें इस प्रकार बताया जाता है—
निन्दा न करना, हिंसा न करना, आचार-नियमद्वारा अपने आपको संयत रखना, मित भोजन, एकान्त-वास तथा योगसाधन।

२. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

३. विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, नितिक्षा, भद्रा तथा समाधान) और मुमुक्षुत्व।

और शक्तिकी पारस्परिक परिवर्तनशीलता के सिद्धान्तों ने 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के दार्शनिक दृष्टिकोण को युक्तियुक्त प्रमाणित कर दिया है।

जीवन और जगत् में तीन भ्रम सर्वव्यापी हैं—स्थान-परक (छोटा-बड़ा समझना), कालपरक (भूत, वर्तमान और भविष्यकी बात करना) तथा अहंपरक (अपनी पृथक् सत्ताका अनुभव करना)। अन्तिम भ्रम सर्वाधिक गहन और कठिन है। इसीकी प्रेरणाके फलस्वरूप हम संसारको दो भागोंमें विभक्त करते हैं—'मैं' और 'मैं नहीं' अर्थात् 'मैंके अतिरिक्त शेष जगत्'। इसीको 'माया' कहते हैं। माया-जन्य 'मैं और मेरा' तथा 'तू और तेरा'—का भाव हमारा प्रबलतम शत्रु है। इसी कारण 'संसार' महा अजय रिपु है। इसपर विजय प्राप्त करना ही संसारके बन्धनोंसे मुक्ति, मोक्ष अथवा निर्वाण है।

परम सत्य तीन रूपोंमें व्यक्त होता है—आत्मा, चेतना तथा पदार्थ। इनके द्वारा उपर्युक्त तीन भ्रम उत्पन्न होते हैं। इनपर विजय प्राप्त करनेके लिये क्रमशः परमात्मा, उसकी योजना तथा विश्वका ज्ञान आवश्यक है। धर्म, दर्शन और विज्ञान क्रमशः इसके साधन हैं। इनके परिणाम क्रमशः इस प्रकार होते हैं—हम 'मैं'के भावको त्यागकर ऐक्य (Self as Unity) का अनुभव करते हैं, समयको अनादि (Time as Eternity) के रूपमें तथा स्थान अथवा दिशाको अनन्त (Space as Infinity) के रूपमें देखने लगते हैं। अन्तिम दोनों वस्तुतः साधन हैं, प्रथम साध्य है। इसीको ज्ञान-प्राप्ति अथवा योग कहते हैं।

विश्लेषणात्मक काम-मनस् और संश्लेषणात्मक बुद्धि-मन के एकत्वके द्वारा योगावस्था-प्राप्ति होती है। रसदशाके समान योगदशाके अन्तर्गत ज्ञाता और ज्ञेयका भेद समाप्त होकर एक अखण्ड सत्ता एवं अनिर्वचनीयताकी अनुभूति होती है। भक्तजन इसे भक्ति-दशा कहते हैं, ज्ञानीजन इसे ज्ञान-दशा कहते हैं और योगीजन इसको 'तुरीया' अथवा समाधिकी दशा कहते हैं।

विज्ञानकी सीमा पदार्थ होनेसे एकत्व-प्राप्ति अथवा योगावस्थाकी प्राप्तिके दो मार्ग ठहरते हैं—धर्म और दर्शन। धर्मकी रसात्मक अनुभूतिका नाम भक्ति है। इस प्रकार ज्ञान और भक्तिके द्वारा एकत्व एवं 'समत्व'की प्राप्ति साध्य है। परंतु

जबतक अहंभाव अथवा काममनस् सचेष्ट एवं क्रियाशील है, तबतक संश्लेषणात्मक आन्तरिक अनुभूति असम्भव है—

केसव ! कहि न जाइ का कहिये ।

देखत तव रचना बिचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिये ।

× × ×

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥

मौलाना रूमीके लिये भी दरवाजा तभी खुला था जब 'मैं' की जगह 'तू' की आवाज़ निकली थी।

ज्ञानमार्ग विवेचन एवं दमनपर आधारित है। इसमें जगत् ('मैं नहीं'वाले पक्ष) की निरर्थकताका प्रतिपादन किया जाता है। अधिक समर्थ तर्क एवं युक्तिकी उपस्थितिमें विवेकके बाधित होनेकी सम्भावना रहती है और मेनकाके प्रकट होनेपर विश्वामित्रके विचलित हो जानेकी आशङ्का सदैव विद्यमान रहती है। इसी कारण ज्ञानका मार्ग अत्यन्त कठिन है—

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक ।

होइ धुनाच्छर न्याय जौ पुनि प्रत्यूह अनेक ॥

योग-मार्गका आधार इन्द्रिय-निग्रह अथवा बलपूर्वक ज्योतिकी जागृति है; परंतु भक्तिके अन्तर्गत आरम्भसे अन्त-तक 'अहं'का निवेदन अथवा अपनी सत्ताके समर्पणका भाव रहता है। भक्तिके अन्तर्गत साधन और साध्यमें अमेद रहता है। इस रसात्मक भूमिकाके अन्तर्गत अखिल विश्वमें ब्रह्मकी व्यक्त प्रवृत्तिका सरस आभास प्राप्त होता है। भक्तको अपने इष्टदेवकी झाँकी कण-कणमें प्राप्त होती है, रहस्यवादी-को उसीकी लाली व्याप्त प्रतीत होती है और प्रेमी (आशिक) को सर्वत्र अपने प्रेमपात्र (माशूक)की झलक (तसवीर) दिखायी देती है।

भक्तिके लिये न विवेचनकी अपेक्षा है और न किसी प्रकारके प्रयत्नकी। इसमें आवश्यक है केवल अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति एवं अनन्त शीलके सागरकी लहरोंका आनन्द लेना। भक्तको न अपनी सत्ताका अनुभव होता है और न अपनी साधनशीलताका गर्व होता है और न फल-प्राप्तिकी इच्छा ही होती है। यह भक्ति न स्वार्थवश होती है और न भयवश। वैभक्तिकताका समावेश होते ही मूर्ति या आलम्बनका प्रकटीकरण हो जाता है और एकरसता अथवा आनन्दकी दशा समाप्त हो जाती है।

वह भगवान्से इसलिये प्रेम नहीं करता कि वे उसे भुक्ति या मुक्ति प्रदान करेंगे । वह भगवान्से प्रेम केवल इसलिये करता है कि वे उसे प्रिय हैं । उसे अच्छे लगते हैं । उसका आदर्श है कि—

जाहि न चाहिअ कबहुँ कलु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु उर सो राउर निज गेहु ॥

आत्म-समर्पणकी दशामें 'अहंकार' के लिये अवकाश कहाँ ? अनन्त आलम्बनकी उपस्थितिमें मनकी चञ्चलताके लिये अवसर कहाँ ? आत्मसत्ताके निराकरणके फलस्वरूप भक्ति-मार्गमें मोहकी सम्भावना न्यूनतम रह जाती है । इसी कारण मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भी भक्तिका मार्ग 'ज्ञान' और 'योग' की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक एवं निष्कण्टक है—

ग्यान विराम जोग बिग्याना । ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ । नारिबग जानइ सब कोऊ ॥
मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥

एकत्व अथवा संश्लेषणात्मक चेतना तथा तज्जन्य विशुद्ध प्रेमकी प्राप्ति समस्त प्रयत्नोंका साध्य है । ज्ञान और योग पहले बाह्य जगत्का एकीकरण करते हैं । कारण-शरीरमें प्रज्ञा प्रतिष्ठित होनेके फलस्वरूप ज्ञान-मार्गमें तथा हृदय-चक्रमें प्राणके प्रविष्ट होनेके फलस्वरूप योग-मार्गमें बुद्धिके द्वारा आन्तरिक एकता अथवा पूर्ण संश्लेषणात्मक चेतनाकी उपलब्धि होती है । तात्पर्य यह है कि अनादि एवं अनन्तके ज्ञानके पश्चात् 'प्रेम'की उपलब्धि होती है । तत्पश्चात् संश्लेषणात्मक चेतनाजन्य आनन्दानुभूति होती है । परंतु भक्तिका आरम्भ और अन्त दोनों ही प्रेम है । इस प्रकार भक्ति-मार्ग अपेक्षाकृत अधिक सरल होनेके अतिरिक्त अधिक श्रेष्ठ एवं उच्चतर स्तरकी साधना है । यथा—

संतो भाई ! आई ज्ञानकी आँधी ।
भ्रमकी टाटी सबै उड़ानी, माया रहै न बाँधी ॥
हित चितकी द्वै धूनि गिरानी, मोह-बल्लोडा तूटा ।
त्रिसना छान परी धरि ऊपर कुबुधिका भाँडा फूटा ॥
आँधी पाछे जो जल बूठा, प्रेम हरी-जन भीना ।
कहै कबीर भानके प्रगटे, तुरत भया तम खीना ॥
भगवान्ने स्वयं कहा है—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥

(गीता १२.१२)

शब्दोंकी सामर्थ्य सीमित होनेके कारण आत्म-ज्ञान अथवा उच्चस्तरीय ज्ञानकी अभिव्यक्तिके लिये प्रायः दो माध्यमोंका अवलम्बन किया जाता है—कथा-कल्पना तथा प्रतीक-विधान । मौनकी भाषा कहकर प्रतीक-विधानको विशेष महत्त्व प्रदान किया जाता है । श्रीमद्भागवतका 'उद्धव-गोपी-संवाद' इसी प्रकारका एक प्रतीक-विधान है । उद्धव ज्ञानके प्रतीक हैं, गोपियाँ भक्ति-रूपा हैं । श्रीकृष्ण अपने नामके अनुरूप समस्त आकर्षण अथवा रागात्मिका वृत्तिके केन्द्र-स्थल हैं । वे भक्ति-स्वरूपा गोपियोंके हृदयरूपी सागरसे उत्पन्न पूर्ण चन्द्र हैं । भक्तिरूपी 'ज्वार' उनके हृदय-सागरमें आनन्दकी उत्ताल तरङ्गें उत्पन्न करती हैं और वे हृदयकी सुकावस्थाको प्राप्त दिखायी देती हैं । कामना या अहंकार-का भाव इस प्रेम-सागरके रंगको बदल देगा—इस कारण वे ज्ञान, योग आदिकी चर्चाको बाधा मानती हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण 'सुरति संदेस सुनाय मैतौ बल्लभिनको दाहु' का उत्तरदायित्व देकर ज्ञानी उद्धवको ब्रज भेजते हैं । उद्धव गोपियोंके सम्मुख अपनी ज्ञान-गठरी खोलते हैं और उद्धव-गोपी-संवादका समारम्भ होता है । अन्तमें ज्ञान-मार्तण्ड-से झुलसे हुए उद्धव भक्तिकी सुधावृष्टिसे सरस-सुहाये होकर लौटते हैं—

सूरस्याम भूतल गिरे रहे नयन-जल छाया ।

पोंछि पीत-पट सों कह्यो आए जोग सिखाय ?

इस प्रकार प्रेम-रूपा गोपियोंके सम्मुख ज्ञान-रूप उद्धव पराजित-से होते हुए दिखायी देते हैं—

गोपी-ताप-तरुन-तरनि-किरनावलिके

ऊधव नितांत कांत-मनि बनि आए हैं ।

भक्त कवियोंने उद्धव-गोपी-संवादके द्वारा नाटकीय प्रणालीपर ज्ञानके ऊपर भक्तिका विजययोग ही नहीं किया है, अपितु एक ज्ञानी भक्तके व्यक्तित्वके क्रमिक विकासका दिग्दर्शन भी किया है । हमारे जीवनकी मुख्यतया चार अवस्थाएँ मानी गयी हैं—बाल्यावस्था, युवावस्था,

प्रौढावस्था और अन्तमें वृद्धावस्था या परिपक्वावस्था । गोपियोंकी भक्तिमें इन अवस्थाओंके स्वरूपका हृदयहारी चित्रण उपलब्ध होता है ।

सर्वप्रथम एक अबोध शिशुकी भाँति—

‘हमको हरिकी कथा सुनाउ’

‘हरिकईको प्रेम कहौ अलि कैसे छूटत ।’

‘हम तो कान्हू केलिकी भूखी,’

‘अँखिया हरिदरसनकी प्यासी,’

—आदि वाक्योंद्वारा वे अपनी विरह-व्यथाको प्रकट करती हैं । इसके पश्चात् वे अपनी उपलब्धियोंकी ओर संकेत करती हुई अपने प्रेमकी अनन्यताका वर्णन करती हुई कहती हैं कि—

नाहिन रहौ मनमें ठौर ।

नंदनंदन अछत कैसे आनिप उर और ॥

प्रौढावस्थाकी प्राप्तिके साथ प्रेम-भावनाका उन्नयन होता है । शान्त आराधनाके रूपमें प्रेमका पर्यवसान होता है और वे प्रिय-दर्शनका आग्रह भी छोड़ देती हैं—

हम तो दुहूँ भाँति फल पायो ।

जो ब्रजराज मिलें तो नीको, ना तरु जग जस गायो ॥

तथा—

जहाँ जहाँ रहौ राज करौ सुख सौं लेहु कोटि सिर भार ।

सूर स्याम हम देत असीसैं, न्हात खसै जनि बार ॥

इसके पश्चात् परिपक्व बुद्धिके फलस्वरूप बालकों-जैसा भोलापन फिर सामने आता है । उस भोलेपनमें और इस भोलेपनमें अन्तर यह है कि बाल्यावस्थाका भोलापन अज्ञानप्रसूत होता है और परिपक्वावस्थाका भोलापन ज्ञानोत्तर होता है । जीवन-जगत्के समस्त अनुभवोंको अन्तःकरणमें धारण करनेवाली गोपियाँ बड़े ही भोलेपनके साथ कह देती हैं कि—

ऊधौ ! मन न भये दस-बीस ।

एक हुतो सु गयो स्याम-सँग, को आराधै ईस ॥

तथा—

उरमें माखनचोर गड़े ।

अब कैसेहु निकसत नहिँ ऊधो, तिरछे है जु अड़े ॥

गोपियोंको ज्ञानमार्ग भलीभाँति विदित है; परंतु वे

उसकी अव्यावहारिकतासे भी परिचित हैं । ज्ञान भक्तिका बाधक है और प्रेम भक्तिका साधक है । इसी कारण वह राज-पथके सदृश सर्वसुलभ है—

काहे को रोकत मारग सूधो ।

सुनहु मधुप ! निर्गुन कंटक तें राजपंथ क्यों रूँधो ?

कारण स्पष्ट है । प्रेमका साधन प्रेम होता है । प्रेमका मार्ग इसी जगत्में होकर जाता है और अन्तमें हमको परमतत्त्व श्रीकृष्णकी ओर मोड़ देता है—

प्रेमप्रेम सों होय प्रेम सों पारहि जैये ।

प्रेम बँधौ संसार, प्रेम परमारथ पैये ॥

एकै निहचै प्रेम कौ जीवन मुक्ति रसाल ।

साँचो निहचै प्रेम कौ जो मिलिहैं नँदलाल ॥

और फिर वस्तुस्थिति तो यह है कि वे योग तो तब करें—

‘जब बियोग होय स्याम सों ।’

उनका तो स्पष्ट कथन है कि—

रावरी रूप रहौ भरि नैनन बैनन के रस सों श्रुति सानौ ।

गात में देखत गात तुम्हारेहि, बात तुम्हारेहि बात बखानौ ॥

ऊधौ ! हहा ! कहियो हरि सों तुम हौ न यहाँ, यह हौ नहिँ मानौ ।

या तन तैं बिलुरै तौ कहा, मन तैं अनतैं जु बसौ, तो जानौ ॥

भक्त गोपियोंके इस प्रेम-प्रवाहमें उद्धवकी ज्ञानगरिमा वह जाती है और वे भक्तिके रंगमें रँग जाते हैं—

सुनि गोपिनको प्रेम नेम उधौको भूल्यौ ।

गावत गुन गोपाल फिरत कुंजनमें फूल्यौ ॥

वास्तवमें उद्धव पराजित नहीं होते हैं, उनका विकास होता है । वे ज्ञानकी केंचुलिका परित्याग करके परा-भक्तिके महासागरमें निमज्जनकर अपने आपको पवित्र कर लेते हैं । यह प्रेम-प्रकर्ष स्नेह-सिक्त हृदयमें ही सम्भव है, मोर-पक्षसदृश निर्जीव आँखें धारण करनेवाले शानी-विशानीके निकट तो जीवन और जगत् जडवत् ही रहेंगे । शानी-विशानी असीम और ससीमकी नाप-जोख भले ही कर लें, परंतु एकत्व-प्राप्तिके लिये साधकको देश-कालकी सीमाओंका उलङ्घन करके भक्तिकी सात्त्विक संधिका संस्पर्श प्राप्त करना ही होगा । गोपियोंने ठीक ही कहा था कि—

ऊधौ ! ब्रह्मग्यान कौ बखान करते न नेकु

देख लेते कान्हू जो हमारी अँखियानु तैं ॥

कम-से-कम आवश्यकता—सुख-शान्तिका सच्चा एवं अनुभूत उपाय

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

विश्वकी अशान्तिका एक सर्वप्रधान कारण संग्रह-वृत्ति यानी परिग्रहकी वृत्ति है । हर एक प्राणी वस्तुओंके अधिक संग्रहसे अपनेको अधिक सम्पन्न समझता है और उनके अधिकाधिक संग्रहके प्रयत्नमें लगा रहता है; उसकी कल्पना है कि वस्तुओंकी प्राप्ति एवं भोगमें ही आनन्द है । पर वास्तवमें यह गलत धारणा है और यही अशान्तिका कारण है । मकड़ीके जालके सदृश प्राणी स्वयं अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाकर उनके जालमें फँस अशान्तिकी सृष्टि एवं वृद्धि करता है; क्योंकि आशा एवं इच्छा अनन्त हैं । अग्निमें ईंधन एवं घी डालनेसे जैसे वह शान्त न होकर उत्तरोत्तर अधिक दीप्त या जाज्वल्यमान हो जाती है, उसी तरह एक आवश्यकताकी पूर्ति होनेसे पहले ही दूसरी इच्छा जाग्रत हो जाती है और जो कुछ पूर्ति होती है वह भी तृप्ति-जनक न होकर उस आवश्यकताके और बढ़ जानेके कारण पूर्ण सुखानुभूति तो होती ही नहीं, वरं अनेकानेक दुःखका अनुभव होता है ।

दूसरे दृष्टिकोणसे विचार करें तो वस्तुएँ सीमित हैं । हर एक प्राणी उनकी आवश्यकताका अनुभव करता है । अतः एक प्राणीके अधिक संग्रह कर लेनेपर दूसरेके लिये उसका अभाव होने लगता है और दोनोंके आपसमें संघर्ष उत्पन्न होकर विश्वमें अशान्तिकी वृद्धि होती है । नैतिक दृष्टिसे देखें तो एक व्यक्तिके अधिक संग्रह कर लेनेपर दूसरेका उसे प्राप्त करनेका जो हक है, वह मारा जाता है । जिसे प्राप्ति नहीं होती उसका अधिक संग्रह कर लेनेवालेपर आक्रोश होना स्वाभाविक ही है । इसी ईर्ष्या एवं वेदनाके कारण जिस किसी प्रकारसे वह अधिक संग्रह करनेवालेका विरोध

करने, उससे छीनकर स्वयं प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, फिर उसमें चाहे सफल हो या न हो ।

तत्त्वज्ञ महापुरुषोंने अनुभूतिके बलपर यह उपदेश दिया है कि आनन्द भोगमें नहीं, त्यागमें है । अनन्त-कालतक हम समीने सुख-प्राप्तिके लिये ही भरसक दौड़-धूप की; पर अभीतक हमारी अशान्ति ज्यों-की-ज्यों ही नहीं बनी हुई है, अपितु बढ़ी ही है । इससे प्रमाणित है कि सुख-प्राप्तिकी हमारी कल्पना या निश्चित किया हुआ मार्ग गलत है । अर्थात् सही और वास्तविक नहीं है ।

महापुरुषोंने इसी कारण त्यागका मार्ग स्वीकार किया और अनुभव करके देखा तो उन्हें असीम आनन्द लाभ हुआ । फलतः अपनी सच्ची अनुभूतिका संदेश उन्होंने विश्वको दिया । उनकी 'संतोषी सदा सुखी' उक्ति सोलह आने सत्य है । उपर्युक्त कथनकी सत्यता (वास्तविकता) का पता लगानेके लिये हम अपना एवं विश्वका पूर्वकालीन इतिवृत्त देखें तो हमें सचाईका स्वयं अनुभव हो जायगा । अपने बाल्यकालमें जब हमारी आवश्यकताएँ कम थीं तो जितना अधिक आनन्द था, आज बड़े होकर अनेक आवश्यकताओंके बढ़ा लेनेके कारण यौवनमें एकके पीछे एक तृष्णा हिलोरें मार रही है, अतः हमें वह आनन्द नजर नहीं आ रहा है । रात-दिन उसी सुखके पीछे पागल होकर प्रयत्न कर रहे हैं । पर सुख हमसे दूर होता चला जा रहा है । आज हमारे सामने एक मजदूर आठ आने या रुपये-दो रुपये कमा लेनेपर सुखकी नींद सो सकता है, पर लक्ष्मीपतिको वह आनन्द कहाँ ? उसे रातभर चिन्ता सताती रहती है । इसके कारणपर विचार

करनेसे स्पष्ट होता है कि मजदूरकी आवश्यकताएँ कम हैं। वह आठ आने, एक रुपयेमें ही अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिका अनुभव कर शान्ति लाभ कर लेता है; पर लक्षाधिपतिकी तृष्णा ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। ज्यों-ज्यों वस्तुएँ अधिक संगृहीत होती हैं, त्यों-त्यों अधिक आवश्यकताएँ, आकाङ्क्षाएँ, इच्छाएँ, कामनाएँ बढ़ती ही चली जाती हैं। अतः द्रौपदीके चीरकी भाँति उनका अन्त नहीं आता। व्यक्ति प्राप्त सामग्रीमें संतोषका अनुभव नहीं करता, इसीलिये सुखकी आस नहीं ले सकता। मजदूरकी आवश्यकता है रोटी, साग, चावल, दाल, पेटभर भोजन एवं पहिनेके दो-चार वस्त्र आदि साधारण वस्तुओंकी, जिनकी पूर्ति एवं प्राप्ति उसको प्राप्त मजदूरीसे हो जाती है। वह कलकी चिन्ता नहीं करता; पर लक्षाधिपतियोंको खाने-पहिनेकी एक-दो नहीं, अनेक प्रकारकी वस्तुओंकी आवश्यकता रहती है, वे भी उन्हें अच्छी-से-अच्छी आकर्षक एवं नित्य नये प्रकारकी चाहिये। वे या हम केवल कल-दूसरे दिनकी ही चिन्ता नहीं करते, पर सारे जीवन एवं अपने परवर्ती संतान—पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्रादि पीढ़ियोंकी चिन्ता करते हैं, यानी उनके लिये भी धन-वस्तुएँ संग्रह करते रहते हैं। तब हमारी तृष्णा मिटे कैसे। हमें अपनी आवश्यकताओंकी जाँच करते रहनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। जब हम इसके चिन्तनकी प्रवृत्तिको अपनायेंगे तो बहुत-से नवीन तथ्य प्रकाशमें आयेंगे।

जिन वस्तुओंको हमने परमावश्यक मान रखा है, जाँच करनेपर उनके बिना भी काम चलता देखकर उन्हें अनावश्यककी ढेरीमें रख दिया जायगा। हजारों वस्तुएँ और बातें, जो सचमुच अनावश्यक हैं, हमने देखादेखी एवं अविचारके कारण ही आवश्यक मान रखी हैं। इसके लिये हमें कम आवश्यकतावाले संयमी पुरुषोंका आदर्श सम्मुख रखना अत्यन्त

उपयोगी होगा। विचार कीजिये उन संयमी पुरुषोंका, जिनका इन वस्तुओंके न होनेपर भी निर्वाह होता है, जीवन सबका समान है। गम्भीरतासे सोचिये, विश्वकी समस्त वस्तुएँ मेरे लिये ही तो निर्मित नहीं हुई हैं? उनके अधिक संग्रहका अधिकारी मैं कैसे? सबका उनपर समान अधिकार है। अतः मेरी संग्रह-वृत्तिसे दूसरेको असुविधा होगी ही; और यदि मुझे वैसी असुविधा हो तो अच्छा लगेगा या बुरा? जीवन क्षण-भंगुर है। अल्पकालके जीवनके लिये परिग्रहका बोझ बढ़ाने जाकर मैं पापोंसे भारी क्यों बनूँ? जीवनका क्या भरोसा? आज है, कल नहीं। अतः इतनी अधिक वस्तुओंका संग्रह भी क्यों किया जाय? महात्मा भर्तृहरिने कहा है 'भोगे रोगभयम्' इत्यादि। अर्थात् उन वस्तुओंका आवश्यकतासे अधिक उपयोग या भोग स्वास्थ्य आदिका विधातक है। तृष्णाका अन्त कहाँ? अतः जीवनको संयमित बनाना ही आनन्दका राजमार्ग है।

आवश्यकताओंको कम करनेका राजमार्ग ऊपर बतलाया गया है। उसपर विचार करें—नित्य जरूरतोंकी जाँच करनेका अभ्यास डालें तो कल्पित आवश्यकताओंको दूर करने तथा प्राप्त वस्तुओंमें संतोष रखनेसे हमें थोड़ेमें ही तृप्तिका अनुभव एवं संतोषका वह सुख होगा, जो बढ़ती हुई तृष्णामें कभी सम्भव नहीं है।

अभी आवश्यकताओंकी अभिवृद्धि और उनकी पूर्तिके सतत प्रयत्नमें ही हम अपना अमूल्य समय बरबाद कर रहे हैं। जरूरतोंके कम होनेपर उनकी पूर्ति सहजमें होगी। अतः अपना अमूल्य समय हम अन्य शुभ कर्मोंमें लगा सकते हैं। पूर्वकालीन मनुष्य जरूरतें कम होनेके कारण ही आध्यात्मिक चिन्तन एवं विकास अधिक कर सकते थे। हमारे शिक्षित एवं बाबू भाइयोंका अधिकांश समय शरीर और वस्त्रको सँवरने एवं कल्पित आ

जरूरतोंको पूरा करनेमें ही चला जाता है। अतः उन्हें परोपकार, प्रभु-चिन्तन, आत्म-निरीक्षण, संन्या-उपासनाका समय कहाँसे मिलेगा ?

आवश्यकताओंकी अधिकताके कारण ही उनकी प्राप्तिके प्रयत्नमें हमारी विचारधारा उलझी रहती है। यदि वे कम कर दी जायँ तो मनकी चिन्ता भी हलकी हो जायगी और सहज ही शान्ति प्राप्त होगी।

वर्तमान सभ्यता एवं शिक्षाप्रणाली मनुष्यको अधिक-से-अधिक विलासी बनाती है। पढ़-लिखकर आमदनी बढ़ायी, तो खर्च भी बढ़ता चला गया। 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की'। बहुतसे शिक्षित व्यक्ति तो खर्च बढ़ जानेसे—जिसका कारण आवश्यकताओंकी अभिवृद्धि ही है—सौ दो सौ एवं सैकड़ों-हजारों रुपये मासिक पानेपर भी चिन्तित ही नजर आते हैं, उनका कर्ज बढ़ता ही चला जाता है; क्योंकि उनके आमदनीसे खर्च अधिक है।

जैनदर्शनके अनुसार हम पूर्वकालीन भारतके मनुष्योंके जीवनका इतिहास टटोलें तो भगवान् ऋषभ-देवके पूर्वके युगमें लोगोंकी आवश्यकताएँ अत्यन्त अल्प थीं। जो थोड़ी-सी थी, उनकी कल्पवृक्षके द्वारा पूर्ति हो जाती थी। वृक्षोंके फल-फूल खाकर वे अपना पेट भर लेते थे। तब किसी तरहकी अशान्ति नहीं थी। पर क्रमशः उनकी आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं और कल्प-वृक्षोंके फलोंकी कमी होने लगी तो एक दूसरेके कल्प-वृक्षोंसे फलादि चुराने एवं छीनने लगे और यहीसे आपसी विरोधकी सृष्टि हुई। सत्ययुगके मनुष्योंको छोड़ थोड़े वर्षों पहलेके एवं वर्तमानके ग्रामीण एवं शहरी जीवनकी तुलना करें तो भी यह बात स्पष्टरूपसे ध्यानमें आ जायगी कि जिसकी आवश्यकता जितनी सीमित है वह थोड़ेमें ही संतोषके कारण सुखी है। जिसने आवश्यकताएँ बढ़ा रक्खी हैं, उसे अधिक प्राप्तिसे भी

अशान्ति है। ग्रामनिवासी लोगोंको देखें तो खानेकी धान चाहिये, वह खेतीमेंसे हो जाता है। कपासकी खेती है, वहाँ कपड़ेका भी साधन सुलभ समझिये अर्थात् थोड़ी ही मेहनत करें तो घरमें कपड़ा तैयार हो जाता है। भेड़-बकरी है तो ऊनी वस्त्र भी तैयार कर सकते हैं। गाय-भैंस है तो दूध-दही एवं घीकी पूर्ति हो जाती है। वस, इतनेमें वह कृषक तो राजा भोज है। उसे न तो पूड़ी, कचौड़ी, मिशाननादि एवं विविध तरकारियाँ चाहिये, न पहननेके लिये भिन्न-भिन्न डिजाइनोंकी गंजी, चोली, कोट और पैंट आदि ही चाहिये तथा न तेल, साबुन एवं सिनेमाकी ही उसे आवश्यकता है। उसकी जरूरतें कम हैं। उसमें भी जितनी सामग्री मिल जाती है, उसीमें संतोष है अतः वह मस्त रहता है।

राजस्थानका लोकजीवन इतना संतोषी एवं सुखी था कि उसकी कुल झाँकी 'इतरा दे किरतार फेर नहीं बोलणा' संज्ञक पद्योंमेंसे भली प्रकार मिल जाती है। उन पद्योंमेंसे साहूकार और कृषककी आकाङ्क्षाओं-सम्बन्धी दो पद्य नीचे दिये जा रहे हैं।

कृषक—

नवी मूँजरी खाट, क नचुव टापरी।

भैसड़ल्ल्याँ दो चार, क दूझै बापड़ी ॥

बाजर हंदा बाट, दहीमें ओलणा।

इतरा दे किरतार फेर नहीं बोलणा ॥

वी सकर अर दूध, क ऊपर पापड़ा।

सातूँ भाया बीच सवाया कापड़ा ॥

घरमें धीणो होय, क हुंडी चालणा।

इतरा दे किरतार, फेर कुण पालणा ॥

जाट और जाटनीकी सीमित आकाङ्क्षाएँ—

घर गायीं री छाग, घड़ा ह्वै केरड़ा।

बेटा पोता बहोत क नेड़ा खेतड़ा ॥

च्चावै सो घर माँय, खजीना खोलणा।

इतरा दे किरतार, फेर नहीं बोलणा ॥

जाटकी बेटी—

पीहर जिण ही गांव, उठै ही सासरो ।

आथूणी दिस खेत, न चूवे आसरो ॥

नाडो खेत नजीक, जठै हल खोलणा ।

इतरा दै किरतार, फेर नहीं बोलणा ॥

जाटनी—

भैसडल्याँ दस-बीस, सुवाड़ी बाखड़ी ।

चर चर लीला घास, बगड़में रह खड़ी ॥

चोखा चावल आंण, सकरमें ओलणा ।

इतरा दै किरतार फेर नहीं बोलणा ॥

आजका लोकजीवन आवश्यकताओंके बढ़ जानेके कारण कितना अशान्त और अस्त-व्यस्त-सा हो रहा है, यह हम सभी जानते हैं । वर्तमानमें जो भ्रष्टाचार और अनैतिकता बढ़ रही है, उसका भी प्रधान कारण आवश्यकताओंकी वृद्धि ही है । इसलिये जीवनको सुखी, शान्त एवं सदाचारी बनानेके लिये आवश्यकताओंको कम करते रहना बहुत ही आवश्यक है ।

टर्कीमें बालक इस्माइलके पुनर्जन्मकी घटना

(लेखक—प्रोफेसर श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी, डाइरेक्टर पैरासाइकोलॉजी-विभाग)

राजस्थान विश्वविद्यालयके पैरासाइकोलॉजी विभागने पुनर्जन्मकी जिन घटनाओंका अध्ययन किया, उनमेंसे एक विशेष महत्वपूर्ण घटनाकी रिपोर्ट इस विभागने हालही-में प्रकाशित की है । रिपोर्टके अनुसार टर्कीके एक मुसलमान-परिवारमें एक इस्माइल नामक बालकने अपने पिछले जन्मका हाल बताकर सबको आश्चर्य-चकित कर दिया है । इस बालकका कहना है कि उसे अपने पिछले जन्मके नामसे बुलाया जाय, न कि इस जन्मके नामसे । इतना ही नहीं, पैरासाइकोलॉजी विभागके डायरेक्टर प्रोफेसर एच्० एन्० बनर्जी जब टर्की गये और इस घटनाका अध्ययन शुरू किया तो देखा कि बालकका अपने पिछले जन्मके परिवारके सदस्योंसे अधिक आत्मीयतापूर्ण एवं असाधारण मित्रता-पूर्ण व्यवहार है जब कि वर्तमान परिवारके सदस्योंसे इतना अच्छा व्यवहार नहीं है । इन सभी कारणोंसे इस घटनाका महत्त्व अन्य अनेक घटनाओंकी अपेक्षा अधिक है ।

घटनाका विवरण

टर्कीके अदाना नगरके निकटवर्ती मिडिक नामक क्षेत्रके बचाहे नामक भागमें एबिट सुजुलुस नामक एक

समृद्ध कास्तकार रहता था । वह एक धनी कास्तकार था और उसके खेतपर बहुतसे मजदूर काम करते थे । उसने अपनी पहली पत्नीको तलाक दे दिया था; क्योंकि उससे कोई संतान नहीं हुई थी । अतः कुछ दिनोंके बाद उसने एक शहीदा नामक सुन्दरी कन्यासे विवाह किया, जिससे कई संतानें हुईं; किंतु उसकी पहली पत्नी हातिश उसके मकानके पासमें ही रहती थी और एबिट उसकी आर्थिक सहायता करता था । एक बार एबिटके यहाँ कुछ मजदूर रोजगारकी तलाशमें आये और एबिटने उन्हें अपने खेतपर काम दे दिया । लेकिन कुछ ही दिनोंके बाद उन्होंने एबिटको एक घोड़ेकी टाँगका घाव दिखानेके बहाने उसके घुड़सालमें बुलाया और ज्यों एबिट घोड़ेकी टाँग देखने नीचे झुका, उन्होंने एबिटकी हत्या कर दी । एबिटकी चीख सुनकर उसकी पत्नी शहीदा और उसके दो बालक घटनास्थलपर पहुँचे; लेकिन हत्यारोंने उनकी भी निर्मम हत्या कर दी । हत्यारे लापता हो गये, लेकिन एक सप्ताहके अंदर ही गिरफ्तार कर लिये गये । अपराधियोंपर मुकद्दमा चलाया गया और इसपर दोको फाँसीकी सजा सुनायी गयी और एक अपराधी जेलमें मर गया ।

कुछ मास पश्चात् एबिटके गाँवसे प्रायः पौने एक मीलकी दूरीपर स्थित एक गाँवमें मेहमत अल्टिंगलिश नामक कसाईके परिवारमें इस्माइल नामक बालकका जन्म हुआ। जब वह डेढ़ सालका हुआ तो अपने पिछले जन्मका हाल बताने लगा। एक दिन जब वह अपने पिताके साथ लेटा हुआ था तो उसने अपने पिछले जन्मका हाल बताना शुरू किया। वह अपने पितासे बोला—‘मैं यहाँसे तंग आ गया हूँ। मैं अपने घर और अपने बच्चोंके पास जाना चाहता हूँ।’ पिताद्वारा धुके जानेपर उसने अपने पिछले जन्मकी कई बातें बतायीं और एबिटकी हत्या, हत्यारोंके नाम और इस सम्बन्धमें अन्य कई बातोंका जिक्र किया। इसके बाद भी इस्माइलने अपने पूर्वजन्मकी घटनाओंकी चर्चा जारी रखी और अपने घरवालोंसे एबिटके घर उसे ले चलनेके लिये आग्रह करता रहा। अन्तमें जब उसकी आयु प्रायः तीन वर्षकी हुई तो श्री इरोल इर्कके आग्रहपर उसके घरवाले उसे एबिटके घर ले जानेके लिये राजी हो गये और उन्होंने इस्माइलसे एबिटके घर और गाँवका रास्ता दिखानेके लिये कहा। बालक इस्माइलने एबिटके गाँव और घरका सही मार्ग-दर्शन करके सभीको आश्चर्य-चकित कर दिया। एबिटके घर पहुँचकर उसने परिवारके सभी सदस्योंको पहचान लिया और वे स्थान भी बताये, जहाँपर घुड़सालमें उसकी हत्या की गयी थी और जिस जगह उसे दफनाया गया था। जब एबिटकी सुपुत्री गुलशरीनको उसने देखा तो उसकी आँखें भर आयीं। गुलशरीनने इस्माइलसे काफी बात-चीत की और उसे पक्का विश्वास हो गया कि इस्माइल वास्तवमें उसका पिता ही है।

इस्माइल बराबर अपने आपको एबिट कहता रहा। १९६२ में जब प्रो० बनर्जी इस घटनाकी जाँच करनेके लिये टर्की पहुँचे, तो उन्होंने स्वयं इस्माइलका एबिटके परिवारवालोंसे आत्मीयतापूर्ण व्यवहार देखा और ठीक

इसके विपरीत व्यवहार वर्तमान जीवनके परिवारवालोंके साथ पाया।

यद्यपि इस घटनाके विषयमें लोगोंको टर्कीमें बहुत पहले ही माझूम हो गया था; लेकिन उसके परिवारवालोंने डेढ़ वर्षतक इस घटनापर कोई ध्यान नहीं दिया। जब प्रो० बनर्जी घटनाकी जाँच करने वहाँ पहुँचे तो किसी भी परिवारने इस खोजमें कोई विशेष उत्साह नहीं दिखाया और उन्हें ऐसा लगा कि दोनों परिवारोंके पारस्परिक सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं थे।

इस घटनाकी जाँचके लिये अनेक मनोवैज्ञानिक रीतियोंका सहारा लिया गया और उन मनोवैज्ञानिक तथ्योंका मूल्याङ्कन किया गया। इस्माइल और एबिटके व्यक्तित्वोंमें अनेक आश्चर्यजनक समानताएँ दिखायी देती हैं। वह निरन्तर आग्रह करता है कि उसे इस्माइल कहनेकी अपेक्षा एबिट कहकर बुलाया जाय और इस्माइल नामसे पुकारनेपर वह इसका कई बार प्रतीकार भी करता है। एबिटके जीवनकी घटनाओंकी चर्चा करते समय उसकी बातोंमें गहरी वेदना और तीव्र लालसा भरी होती है। जैसे वह कहता है—‘मेरा एक मकान है। मेरे बच्चोंके नाम हैं—जाकि, हिकमत और गुलशरीन। वहाँ मेरी कब्र है’ आदि।

एक बारकी बात है, इस्माइलके पिता बाजारसे कुछ तरबूज लाये। इस्माइलने सबसे बड़ा तरबूज छूँट लिया और अपने पितासे उस तरबूजको अलग रखनेके लिये कहा, ताकि वह उसे अपनी लाइली बिटिया गुलशरीनके लिये भिजवा सके। पिताने ऐसा करनेसे इन्कार किया तो वह रोने लगा।

यद्यपि इस्माइल अभी बालक है और उसे राकी नामकी टर्की शराब पीनेकी अनुमति नहीं है। फिर भी उसे जब मौका मिलता है वह शराब पीता है। शायद इसका यह कारण हो सकता है कि एबिटको शराबका बहुत शौक था।

जब इस्माइल ढाईसे तीन सालका था तो उसके पिताने जो कि एक कसाई था, मांसका कबाब बनाया। इस्माइलने आग्रह किया कि कबाबका कुछ भाग उसके बच्चोंके लिये भिजवा दिया जाय। पिताद्वारा मना किये जानेपर इस्माइल रोने लगा।

तीन वर्षीय इस्माइल जब पहली बार एबिटके मकान-पर गया तो उसने तुरंत हातिशको पहचान लिया और आँखोंमें आँसू भरकर हातिशका आलिंगन किया। यद्यपि इस्माइलके माता-पिता बहुत निर्धन हैं और मिठाई आदि खरीदना उनके लिये काफी कठिन है तथापि जब भी इस्माइल एबिटके घर जाता है तो वह

मिठाइयाँ ले जाता है और अपने बच्चोंमें मिठाई बाँटता है।

प्रो० बनर्जी इस घटनाकी जाँच करने जब इस्माइलके निवासस्थानपर पहुँचे तो इस्माइलको अपने मकानके बाहर खेलते हुए पाया। जब प्रो० बनर्जीने उसे इस्माइल कहकर पुकारा तो उसने कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन एबिट कहकर बुलानेपर उसने तुरंत खेलना छोड़ दिया और प्रो० बनर्जीके निकट आ गया। जब उससे पूछा गया कि 'तुम्हारा नाम क्या है।' बालकने उत्तर दिया 'एबिट सुजुत्सुस'*।

निष्काम कर्म जीवन है

(लेखक—विद्यावान्वस्पति डा० श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी०लिट्०)

भौतिक देह अचिर अस्थिर है,
आत्म-तत्त्व ही अजर-अमर है,
सत्ता, बल-वैभव नश्वर है,
सत्य धर्म ध्रुव धन है—
निष्काम कर्म जीवन है।

लौकिक माया-ममतामें पड़,
स्वार्थ-साधनाके रणमें अड़,
क्यों कर्तव्य-विमुख है तू जड़,
अति कुत्सित चिन्तन है—
निष्काम कर्म जीवन है।

जो आया है, वह जाएगा,
काल-व्याल सबको खाएगा,
गुण-गौरव ही रह जाएगा,
यही विश्व-वन्दन है—
निष्काम कर्म जीवन है।

जुग-जुग जिओ, अभी मर जाओ,
सुख भोगो या दुःख उठाओ,
पर न भीरुता-भाव दिखाओ,
स्वस्थ देह, शुचि मन है—
निष्काम कर्म जीवन है।

मानवताका त्राण करो सब,
देश-जाति कल्याण करो सब,
नवजीवन-निर्माण करो सब,
गीता-ज्ञान गहन है—
निष्काम कर्म जीवन है।

* पैरासाइकोलॉजी विभाग इस प्रकारकी पुनर्जन्मसम्बन्धित घटनाओंका संग्रह और अध्ययन करता है। अतः पाठक महानुभावोंसे अनुरोध है कि इस प्रकार पुनर्जन्मकी घटनाओंके विषयमें यदि उन्हें मालूम हो, तो कृपया निम्न पतेपर सूचित करनेका कष्ट करें। पुनर्जन्मकी नवीन अथवा पुरानी घटनाएँ अथवा साहित्य पैरासाइकोलॉजी विभागके लिये विशेष महत्त्व रखती हैं।

[प्रोफेसर हेमेन्द्रनाथ बनर्जी, डाइरेक्टर, पैरासाइकोलॉजी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)]

अनुगीता और अनासक्ति

(लेखक—डा० श्रीकन्हैयालालजी सहल, एम० ए०)

भगवान् श्रीकृष्णने महाभारतमें युधिष्ठिरको मनोनिग्रहके विषयमें उपदेश देते हुए शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यके निम्नलिखित लक्षण निर्दिष्ट किये थे—

शीतोष्णे चैव वायुश्च गुणा राजन् शरीरजाः ।

तेषां गुणानां साम्यं चेत् तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ॥

(अश्वमेधपर्व १२ । ३)

अर्थात् हे राजन् ! शीत, उष्ण और वायु—ये तीन शरीरके गुण हैं । इन तीनों गुणोंमें समानता होनेपर मनुष्य शारीरिक दृष्टिसे स्वस्थ कहा जाता है । इसी प्रकार यदि अन्तःकरणके सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—इन तीनों गुणोंमें साम्य हो तो मनुष्यको मानसिक दृष्टिसे स्वस्थ समझना चाहिये ।

सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रय आत्मगुणाः स्मृताः ॥

तेषां गुणानां साम्यं चेत् तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ।

(अश्वमेधपर्व १२ । ४-५)

गीतोपदेश सुननेपर अर्जुनने मानसिक दृष्टिसे स्वास्थ्य-लाभ किया था; किंतु आगे चलकर समय-समयपर अर्जुनका मन विचलित होता रहा है ।

युद्ध-विजयके उपरान्त अर्जुनने एक दिन श्रीकृष्णसे कहा कि जो उपदेश आपने मुझे दिया था, वह मैं भूल गया हूँ, इसलिये वही उपदेश दुबारा सुनना चाहता हूँ ।

यत् तद् भगवता प्रोक्तं पुरा केशव सौहृदात् ।

तत्सर्वं पुरुषव्याघ्र नष्टं मे भ्रष्टचेतसः ॥

(अश्वमेधपर्व १२ । ६)

इसपर श्रीकृष्णने अर्जुनको आड़े हाथों लेते हुए कहा था कि 'अर्जुन ! तुमने अपनी नासमझीके कारण उस उपदेशको जो याद नहीं रक्खा, वह मुझे बहुत

अप्रिय है । उन बातोंका पूरा-पूरा स्मरण होना अब सम्भव नहीं—

अबुद्ध्वा नाग्रहीर्यस्त्वं तन्मे सुमहदप्रियम् ।

न च साद्य पुनर्भूयः स्मृतिर्मे सम्भविष्यति ॥१०॥

पाण्डुनन्दन ! निश्चय ही तुम बड़े श्रद्धाहीन हो, तुम्हारी बुद्धि बहुत मंद जान पड़ती है । हे धनञ्जय ! अब मैं उस उपदेशको ज्यों-का-त्यों नहीं कह सकता—

नूनमश्रद्धधानोऽसि दुर्मेधा ह्यसि पाण्डव ।

न च शक्यं पुनर्वक्तुमशेषेण धनञ्जय ॥

इस प्रकार अर्जुनको फटकार बतलाकर श्रीकृष्णने अनेक आख्यानोकी सहायतासे फिर उपदेश दिया जो 'अनुगीता'के नामसे प्रसिद्ध है । 'अनुगीता'के अन्तमें भी अनासक्तियोगकी प्रशंसा तथा ममताका खण्डन किया गया है—

कुर्वते ये तु कर्माणि श्रद्धधाना विपश्चितः ।

अनाशीर्योगसंयुक्तास्ते धीराः साधुदर्शिनः ॥६॥

जो विद्वान् समत्व-योगमें स्थित हो श्रद्धाके साथ कर्तव्य-कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं और उनके फलमें आसक्त नहीं होते, वे धीर और उत्तम दृष्टिवाले माने गये हैं । 'मम'की भावनाको मृत्यु ठहराते हुए कहा गया है—

द्वयक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्रयक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।

ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम् ॥२९॥

दो अक्षरोंका पद 'मम' मृत्युरूप है और तीन अक्षरका पद 'न मम' यह मेरा नहीं है, यह भाव सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला है ।

वस्तुतः जबतक ममत्व-बुद्धि बनी रहती है, तबतक आसक्ति दूर नहीं होती और सच्चा स्वास्थ्य-लाभ भी तभी होता है जब हम ममत्व और आसक्तिसे ऊपर उठ जाते हैं ।

अभी कुछ नहीं बिगड़ा

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

देखो, यह भक्त तबसे सिर झुकाये चुपचाप तन-क्षीण मन मलीन-सा बैठा है। कुछ बतलाता नहीं क्या कष्ट है इसे।

‘महाराज ! बड़ा कुटुम्ब, यह भयंकर महँगाई, पैसेका न होना, तन क्षीण और मन मलीन न हो तो क्या हो ?’

‘महाराज ! आज बच्चोंके अनशनका तीसरा दिन है। उन बच्चोंके जिनके अनशनसे महाराणा प्रताप भी विचलित हो गये थे। फूटी कौड़ी.....।’

‘बच्चा, लक्ष्मी सब आनी-जानी है। इसकी चिन्ता नहीं किया करते। हानि-लाभ तो चलता ही रहता है। जबतक आदमीका रोजगार बना हुआ है तबतक उसका कुछ नहीं बिगड़ा, कुछ नहीं बिगड़ा। फिर कमा लेगा।’

‘महाराजजी ! यही तो चिन्ता है मेरा व्यवसाय चौपट हो गया, मेरी दूकान उठ गयी, मेरा कोई रोजगार नहीं।’

‘तो क्या बिगड़ा, तो क्या बिगड़ा। जबतक आदमीकी साख मौजूद है, तबतक उसका कुछ नहीं बिगड़ा, कुछ नहीं बिगड़ा। एक नौकरी छूट जाती है, दूसरी मिल जाती है। एक दूकान उठ गयी, दूसरी चल निकलती है।’

‘महाराज ! मेरी साख जाती रही। मेरे तो लाख और साख दोनों जाते रहे।’

‘तो क्या हुआ, बच्चा ! तुम्हारा अभी कुछ नहीं बिगड़ा। जबतक मनुष्यमें व्यावसायिक कुशलता मौजूद है तबतक उसका कुछ नहीं बिगड़ा, कुछ नहीं बिगड़ा। कुशलता चाहिये, साख जमते क्या देर लगती है।’

‘महाराज ! व्यावसायिक कुशलता तो मुझमें कभी थी ही नहीं। भाग्य, पूर्वजन्मका पुण्योदय और आप-जैसे संतोंके आशीर्वादसे पहले कुछ कमा लिया था सो अब खो दिया।’

‘व्यावसायिक कुशलता भी कोई चीज है। माँके पेटसे कौन सीखकर आता है। जबतक शरीर स्वस्थ है तबतक सब कुछ सीखा जा सकता है। तबतक कुछ नहीं बिगड़ा, कुछ नहीं बिगड़ा, कुछ नहीं बिगड़ा।’

‘महाराजजी, मुझे पुराना मधुमेह है। कामसे जी घबराता हूँ। नयी बात दिमागमें नहीं बैठती और पुरानी याद नहीं रहती।’

‘जबतक हम एक सबल और सशक्त समाजके सदस्य हैं तबतक हमें किसी बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। देखो बच्चा ! वही डाली सूखती है जो जड़से अलग हो जाती है। वही मनुष्य सूखता है जो अपने समाजसे अलग हो जाता है। बच्चा ! जबतक इस सबल और सशक्त समाजमें तुम्हारा स्थान है तबतक तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ा, कुछ नहीं बिगड़ा।’

‘महाराज ! निर्धन और असहायका समाज कैसा और परिवार कैसा ? मैं समाजसे अलग नहीं हुआ, समाज मुझसे अलग हो चुका है।’

‘जबतक तुम्हारे पास सहनशीलता, मीठी वाणी और एक उदार-हृदय मौजूद है तबतक तुम्हें समाजकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये। जिसके पास शील है उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है, गया समाज फिर लौट आता है। वह जब चाहे तब नया समाज बना सकता है। सारा विश्व उसका समाज है, प्रत्येक परिवार उसका परिवार है।’

‘महाराज, मैं न तो कष्टसहिष्णु ही हूँ, न उदार-मन । मीठी वाणी तो मैं बोलना जानता ही नहीं । मेरी पैनी और विषभरी वाणीसे चाहे जिसका हृदय छिदवा लो । बड़े प्रयत्नपूर्वक मैंने इसका अभ्यास किया है ।’

‘जो व्यक्ति चरित्रवान् है, जो सदाचारी है उससे शील कहाँ रूठ कर जायगा ? बच्चा ! एक चरित्रवान् व्यक्तिका कभी कुछ नहीं बिगड़ता, कभी कुछ नहीं बिगड़ता ।’

‘महाराज, मैं चरित्रवान् नहीं हूँ ।’

‘ओहो, तुम्हारे पास विवेक तो है । जिसकी विवेक-

बुद्धि नष्ट नहीं हुई उसका क्या बिगड़ता है, उसका क्या बिगड़ता है ।’

‘मेरा विवेक नष्ट हो चुका ।’

‘तो फिर क्या बिगड़ा जबतक तुम्हारी ईश्वरमें निष्ठा अविचल है, तबतक तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ा, कुछ नहीं बिगड़ा । जिसके पास निष्ठा-जैसी अमूल्य सम्पत्ति है उसका क्या बिगड़ा, उसका क्या बिगड़ा ?’

आगन्तुकके मुखमण्डलपर हल्की-सी मुस्कान खेल उठी । वह, अपनेको और धोखा नहीं दे सका, चिल्ला उठा, ‘तो बाबा, अभी कुछ नहीं बिगड़ा, अभी कुछ नहीं बिगड़ा ।’

तन्त्रोपचारका रहस्य

(लेखक—श्रीलालजीरामजी शुक्ल एम्० ए०)

जबसे मानवने बोलना और सोचना सीखा, तबसे उसने अपनी आधिभौतिक और आधिदैविक आपत्तियोंके निवारण-के उपाय भी सोचे । मनुष्यको जब किसी प्रकारका रोग हो जाता है तो वह स्वभावतः उसका निराकरण अपने आस-पासमें मिलनेवाली वस्तुओंके द्वारा करनेकी चेष्टा करता है । इस प्रकार अनेक प्रकारकी ओषधियोंका आविष्कार हुआ । मनुष्यके कुछ रोग ऐसे भी होते हैं जिनकी उसे कोई भी ओषधि दिखायी नहीं देती, तब वह ऐसी किसी सत्ताकी दयाका आह्वान करता है जो उसे उस दुःखसे बचावे । ये सत्ताएँ भूत-प्रेत, देवी-देवता अथवा ईश्वरके रूपमें मान ली जाती हैं । समाजके कुछ लोग अपने जीवनको इनकी समीपता प्राप्त करनेमें लगा देते हैं । ये समाजके पंडा अथवा पुरोहित कहलाते हैं । ये लोग समाजके बाकी लोगोंके द्वारा अधिक सम्मानित रहते हैं और उनके विश्वासपात्र बन जाते हैं । अपनी निःस्वार्थता और समाज-सेवामें तत्परता-के कारण उन्हें ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है कि जो उनके शब्दको विशेष शक्ति दे देती है । ऐसे ही लोगोंके वाक्य मन्त्र-तन्त्र बन जाते हैं ।

किसी भी मन्त्रमें शक्ति लानेके लिये मन्त्रज्ञाताको

साधनाकी आवश्यकता होती है । यह साधना उस मन्त्रके द्वारा मनको बलवान् बनानेकी साधना है । मन्त्र इच्छा-शक्तिको बलवान् बनानेका साधन है । जिस मनुष्यकी इच्छाशक्ति बलवान् है, वह विपत्तिमें पड़े हुए व्यक्तिको, शारीरिक रोगसे पीड़ित व्यक्तिको अथवा किसी मानसिक व्याधिमें उलझे हुए व्यक्तिको अधिक सहायता कर सकता है । इच्छा-शक्तिका बल रखनेवाला व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके मनपर ऐसा प्रभाव डालता है कि उसीके अनुसार दूसरा व्यक्ति सोचने लगे । जैसा मनुष्यका मन होता है वैसा ही उसका शरीर बन जाता है । यदि कोई व्यक्ति अपने जीवनसे निराश हो गया हो तो उसे घातक रोग शीघ्र ही पकड़ लेते हैं और यदि मरते हुए व्यक्तिको भी जीनेके लिये आशान्वित कर दिया जाय तो वह जी जाता है ।

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक तथ्य तन्त्रोपचारका आधार है । तन्त्रोपचार उतना ही पुराना है जितना मानव-जातिका इतिहास । भारतवर्षमें यह वैदिक-कालसे आज दिनतक चला आ रहा है । यूरोपमें प्राचीन यूनानी इसमें विश्वास करते थे और बीसवीं शताब्दीमें नेन्से नगरमें इमील कुष्ट

नामक साधक तन्त्रोपचारके द्वारा ही हजारों मानसिक और शारीरिक रोगोंकी चिकित्सा करते थे।

तन्त्रोपचारको आधुनिक मनोविज्ञानकी भाषामें 'निर्देश-चिकित्सा-विधि' (Suggestion Therapy) कहते हैं। निर्देशन मनुष्यके अचेतन मनको प्रभावित करता है। मनुष्यका यही मन है जो उसकी आन्तरिक, मानसिक और शारीरिक क्रियाओंको संयोजित करता है। किसी व्यक्तिको समझाने-बुझानेसे हम केवल उसके चेतन मनको ही प्रभावित करते हैं। इस मनमें शरीरकी भीतरी क्रियाओंको चलानेकी शक्ति नहीं है और यह मनुष्यके शारीरिक और मानसिक रोगोंका निवारण नहीं करता। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि यह मन मन्त्रकी शक्तिमें विश्वास भी न करे। मनुष्यका चेतन मन तार्किक होता है। तर्क किसी भी रचनात्मक कल्पनाको ठहरने भी नहीं देता। अतएव तर्कयुक्त बातसे कोई भी स्वास्थ्यवर्धक अथवा रोगनिवारक कार्य नहीं होते।

किसी भी व्यक्तिको किसी रोगसे मुक्त करनेके लिये आवश्यक है कि उसके मनमें यह बात जमा दी जाय कि वह उस रोगसे मुक्त हो जायगा। किसी प्रकारकी प्रगतिके लिये मनुष्यके मनके विचारोंकी दशा रचनात्मक बना देना आवश्यक है। विश्वास मनुष्यके मनकी चञ्चलताको रोककर उसे आशावादी दिशामें मोड़ देता है और इससे मनुष्य न केवल रोगमुक्त हो जाता है वरं प्रगतिशील भी बन जाता है।

विश्वास विचारके परे वस्तु है। जब विचार शान्त हो जाता है तभी विश्वास उत्पन्न होता है। विचार विचारको शान्त नहीं कर सकता। इसके लिये व्यक्तिके अचेतन मनको प्रभावित करना आवश्यक है। मनुष्यका अचेतन मन प्रेमके द्वारा अथवा तन्त्रके द्वारा प्रभावित होता है और जब अचेतन मन प्रभावित हो जाता है तब वह अपनी अपार शक्ति मनुष्यके व्यक्तित्वको दे देता है। इसी शक्तिके कारण चमत्कारिक बातें मनुष्यके शरीरमें और उसके जीवनमें उपस्थित होती हैं।

आधुनिक कालमें तन्त्रोपचारमें अग्रगण्य नाम बेलजियम-के प्रसिद्ध समाज-सेवक मेस्सरका है। उन्होंने एक विशेष प्रकारकी साधना की थी। इस साधनाके कारण वे अनेक

मानसिक और शारीरिक रोगियोंको रोगमुक्त कर देते थे। उनके यहाँ पचासों रोगी उनके बनाये हुए एक टबनुमा यन्त्रके आस-पास बैठते और उसके ऊपरी हिस्सेको पकड़े रहते थे। मेस्सर एक विशेष प्रकारके लाल गाउनको पहिनकर आता था और एक काँचके ढंडेसे उन रोगियोंको छूता था। उसके छूते ही हिस्टीरिया रोगसे पीड़ित व्यक्ति उभाने लगते थे और इस प्रकार धीरे-धीरे उनका रोग दूर हो जाता था।

यह बात आजसे तीन-सौ वर्ष पहलेकी है। अभी हालमें ही आक्सफोर्डके डिलावार इन्स्टीट्यूटके संचालक डिलावार महोदयने भी एक ऐसी मशीन बनायी, जिसके छुए रहनेपर अनेक प्रकारके असाध्य रोग नष्ट हो जाते थे; परंतु जिस प्रकार मेस्सर महोदयके अनेक शत्रु उसके जीवनकालमें ही हो गये, उसी प्रकार डिलावारके भी शत्रु इंग्लैंडमें हो गये। डिलावारपर मुकदमा भी चला जिसमें उसे काफी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी, फिर भी उसका मनकी अद्भुत शक्तिमें विश्वास नहीं बदला। डिलावारने गेहूँके पौधोंकी बाढ़पर प्रयोग करके यह बताया कि मनुष्यके भले अथवा बुरे विचार न केवल मानवको वरं पेड़-पौधोंको भी प्रभावित करते हैं। मनुष्य अपने आशीर्वादसे किसी व्यक्तिको जटिल रोगसे मुक्त कर सकता है और अपनी बददुआओंसे उसे मृत्युके मुखमें पहुँचा दे सकता है। भारतवर्षमें विश्वासके द्वारा रोगमुक्तिके दो प्रयोग उल्लेखनीय हैं। एक उज्जैनके स्व० डा० दुर्गाशंकर नागरद्वारा और दूसरा लखनऊके स्व० दीपनारायणसिंहद्वारा। इन दोनों व्यक्तियोंने रोगियोंकी सेवाके लिये विशेष प्रकारकी साधना की थी। जिन रोगियोंको सबसे अधिक इनकी संस्थाओंमें लाभ हुआ वे प्रायः अनेक प्रकारके मानसिक रोगी थे। उनके शारीरिक रोग भी मनोजात थे। ये व्यक्ति विशेष प्रकारकी साधनाएँ करते रहते थे। ये साधनाएँ यौगिक कहलाती हैं। डाक्टर दुर्गाशंकर नागर दिनमें तीन बार प्रार्थना करते थे और शामकी प्रार्थनामें सभी रोगियोंको बुलाते थे। यह प्रार्थना दूसरी प्रार्थनाओंसे लंबी होती थी। इसी समय रोगीके अचेतन मनको शान्त वातावरण उत्पन्न करके सन्निर्देशके द्वारा प्रभावित किया जाता था। इस प्रभावसे न केवल मानसिक रोगी, वरं शारीरिक रोगी भी अपने रोगसे मुक्त हो जाते थे। बहुत दूरके रोगी उनके पत्र अथवा तारके द्वारा ही प्रभावित होकर स्वास्थ्य लाभ कर लेते थे। दीपनारायणसिंह एक ही प्रकारकी दवा सभी रोगियोंको

देते थे, जिसे वे प्रतिदिन छुआ करते थे । कभी-कभी वे रोगियोंको सम्मोहित भी करते थे ।

डा० फ्रायडने उपर्युक्त प्रकारकी चिकित्साको रोगीके लिये हितकर नहीं बताया । इस विधिको 'निर्देशन-विधि' कहा जाता है । इससे रोगी थोड़े समयके लिये रोगमुक्त हो जाता है; परंतु इससे उसके रोगका केवल दमनमात्र होता है । वह एक बार अन्तर्धान होकर फिरसे उसी रूपमें अथवा रूपान्तरित होकर बाहर आता है । फ्रायडने यह बात नेन्सेमें देखी, जहाँ वह इमील कुएसे उसकी विशेष प्रकारकी चिकित्सा-प्रणाली सीखने गया था । उसने देखा कि नेन्सेमें आये हुए हिस्टीरिया रोगके रोगी बार-बार अपने रोगको लेकर आते हैं । फ्रायडने इसीसे असंतुष्ट होकर अपनी मनोविश्लेषण पद्धति निकाली । उनके कथनानुसार निर्देशन-विधि रोगीके मनको निर्बल बनाती है और रोगकी जटिलताको बढ़ाती है ।

जर्मनीके प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्पेंगर महोदय और इंग्लैंडके डा० विलियम ब्राऊन डा० फ्रायडके उक्त कथनको एकाङ्गी बताते हैं । डा० फ्रायड जडवादी थे । अतएव वे मनकी किसी ऐसी शक्तिमें विश्वास नहीं करते थे जो सामान्य तार्किक विचारसे सिद्ध न हो सके, परंतु किसी तथ्यकी सत्यताका निर्णय वास्तविक प्रदत्तोंके आधारपर ही किया जा सकता है । डा० विलियम ब्राऊन पिछली लड़ाईमें सिपाहियोंकी मानसिक चिकित्सा करते थे । उन्होंने हजारों रोगियोंकी सफल चिकित्सा की । इसमें वे निर्देशन और मनोविश्लेषण दोनों विधियोंसे काम लेते थे । उन्होंने किशोर बालकोंको उनकी जटिल आदतोंसे मुक्त करनेमें इस विधिकी विशेषरूपसे प्रयोग किया ।

तन्त्रोपचार-विधिमें दो बातें आवश्यक हैं । पहली चिकित्सकका अपनी साधनामें विश्वास और दूसरी रोगीकी चिकित्सकपर श्रद्धा । अपनी मन्त्रशक्तिमें विश्वास बढ़ानेके लिये चिकित्सकको कुछ साधनाएँ करनी पड़ती हैं । ये साधनाएँ विभिन्न देश तथा समाजकी संस्कृतिके अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं । कभी-कभी साधक किसी बाहरीसत्ताको स्वीकार करता और उसको आधार बनाकर इच्छा-शक्तिको मन्त्रद्वारा

मजबूत बनानेकी चेष्टा करता है और कभी-कभी वह सीधे ही मनको रोकनेका अभ्यास करता है । यह निश्चित है कि बिना तप और त्यागके मनोबल नहीं बढ़ता । अनेक दिनोंके अभ्याससे मन्त्रमें वह शक्ति आती है जिससे साधक दूसरे व्यक्तिके मनको विशेषरूपसे प्रभावित कर सकता है ।

जहाँतक रोगीकी श्रद्धाकी बात है, यह चिकित्सकके व्यक्तित्वपर निर्भर करती है । श्रद्धाका पात्र वही व्यक्ति हो सकता है जो परोपकारी, तपस्वी और त्यागी हो । श्रद्धा मनुष्यके अचेतन मनको प्रभावित करती है और उसके कारण मनुष्य अपने अनजाने ही अपने निराशावादी बिचारोंसे मुक्त हो जाता है । फिर उसके अचेतन और चेतन दोनों ही मन रचनात्मक कार्यमें लग जाते हैं । डा० विलियम ब्राऊनका कथन है कि किसी भी दैविक आत्माके सम्पर्कमें आते ही रोगीका मन उसी प्रकार बदल जाता है, जिस प्रकार एक चुम्बकके समीप आते ही एक साधारण लोहेके टुकड़ेमें भीतरी परिवर्तन हो जाता है । महान् पुरुषकी समीपतासे सामान्य व्यक्तिकी शक्तियाँ उसी प्रकार एकमुखी हो जाती हैं, जिस प्रकार चुम्बककी समीपतासे लोहेके टुकड़ेके अणु एकमुखी हो जाते हैं ।

इस प्रकार डा० विलियम ब्राऊनने विश्वासके द्वारा चिकित्सा अथवा तान्त्रिक चिकित्साकी वैज्ञानिकता सिद्ध की है । मनुष्यके अचेतन मनकी भाषा हमारी सामान्य भाषासे भिन्न होती है । जो बातें चेतन मनको निरर्थक दिखायी देती हैं वे अचेतन मनके लिये सार्थक होती हैं । इस प्रकार रोगीको रोगसे मुक्त करनेके लिये उसको लिटा करके अर्धसुप्त अवस्थामें पहुँचाकर पास देना सार्थक होता है । इसी तरह भूतसे पीड़ित व्यक्तिका झाड़ना-फूँकना अथवा उसपर गङ्गा-जल छिड़कना उपयोगी होता है । कभी-कभी ताबीज बाँधनेसे भी ये लाभ होते हैं । किसी तीर्थयात्रामें जाना, यज्ञ-होम करना अचेतन मनके लिये विशेष अर्थ रखते हैं । ये सभी क्रियाएँ रोगीके अचेतन मनको प्रभावित करने और उसके आत्मविश्वास बढ़ानेके उपाय हैं । प्रत्येक धार्मिक व्यवहारोंमें इन्हें स्थान है और इनके द्वारा न केवल रोगियोंका लाभ होता है वरं सामान्य लोगोंका भी लाभ होता है ।



समताका महत्व

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

साधककी उच्चस्थितिके लिये समभाव परम आवश्यक है। राग-द्वेषका सर्वथा अभाव होनेपर ही समत्वभाव प्राप्त हो सकता है। इसलिये भगवान्ने गीतामें स्पष्ट कहा है कि साधकको राग-द्वेषके वशमें नहीं होना चाहिये। ये दोनों इसके परिपन्थी अर्थात् साधनके विरोधी हैं (गीता ३।३४)। इनसे रहित होकर कर्तव्यका पालन करनेवाला मनुष्य निःसंदेह परमात्माको प्राप्त हो जाता है। (गीता अध्याय २।६४-६५) अतः साधकको चाहिये कि राग-द्वेषका सर्वथा त्याग करके अपने हृदयमें समभावकी स्थापना करे। समता ही वास्तवमें योग है (गीता २।४८)। गीताके अध्याय ६ में भगवान्ने ध्यानयोगका वर्णन आरम्भ करनेके पहले इस समभावका महत्व इस प्रकार वर्णन किया है—

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ८ ॥
सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

‘सर्दी-गरमी और सुख-दुःखादिमें तथा मान और अपमानमें जिसके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ भलीभाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके ज्ञानमें सच्चिदानन्दधन परमात्मा सम्यक् प्रकारसे स्थित है अर्थात् उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं। जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकार-रहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, वह योगी मुक्त अर्थात् भगवत्-प्राप्त है, ऐसे कहा जाता है। सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धु-गणोंमें, धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी समानभाव रखनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठ है’।

इसके सिवा गीतामें भगवान्ने अपने प्रिय भक्तका लक्षण करते हुए भी स्पष्ट कहा है—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविजितः ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥

(१२।१८-१९)

‘जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सर्दी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है, जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही संतुष्ट है और शरीरमें तथा रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि पुरुष मुझको प्रिय है।’

इस प्रकरणमें हर्ष, शोक, द्वेष, चिन्ता और कामनाका अभाव दिखाकर भी राग-द्वेषके अभावका और समताका ही महत्व प्रकट किया गया है तथा गीता अध्याय १४ में गुणातीत भगवत्प्राप्त पुरुषका लक्षण करते हुए भी स्पष्ट कहा है कि—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

‘जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है। जो मान और अपमानमें सम है, मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है एवं सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है।’

अतः साधकको चाहिये कि हरेक स्थितिमें भगवान्का आश्रय लेकर सर्वत्र समभावसे प्रभुका चिन्तन करते हुए राग-द्वेष आदि विषम भावनाका सर्वथा त्याग कर दे। किसीको भी बुरा न समझे और किसीके दोष न देखे। किसीके भी दोषोंका वर्णन या चिन्तन न करे। अपने अन्तःकरणमें समान भावसे सब प्राणियोंके हितकी भावनाको स्थायी करे। भगवान्ने निर्गुण निराकारकी उपासनाका वर्णन करते हुए भी साधकको ‘सर्वभूतहिते रताः’ का विशेषण

दिया है (गीता १२।४)। अध्याय ५ श्लोक २५ में भी विषमताके नाशको और समभावसे सब प्राणियोंके हितमें लगे रहनेको परमात्माकी प्राप्ति साधन माना है।

गीताके श्लोकोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेपर यह स्पष्ट समझमें आ सकता है कि राग-द्वेष, ईर्ष्य-शोक, चिन्ता-भय आदि समस्त विकारोंका मूल कारण विषमभाव ही है अतः इसका सर्वथा त्याग करना साधकके लिये परम आवश्यक है।

साधकको चाहिये कि अपनी अनुकूलताको पूरी करनेके लिये आग्रह, इच्छा और कामना न करे। उसके पूरी न होनेमें चिन्ता, शोक, भय तथा अन्य किसी प्रकारकी व्याकुलता आदिके भाव अन्तःकरणमें उत्पन्न न होने दे। गीता अ० ५ श्लोक २० में भी भगवान् ने स्पष्ट कहा है—

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।

स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः॥

‘जो पुरुष प्रियको प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रियको प्राप्त होकर उद्विग्न न हो, वह स्थिरबुद्धि संशय-रहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मामें एकी-भावसे नित्य स्थित है।’

गीता अ० ५ के श्लोक १८ और १९ में भी समत्वका महत्त्व इस प्रकार दिखलाया गया है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

‘जो ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं, जिनका मन समभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है; क्योंकि सच्चिदानन्दधन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दधन परमात्मामें ही स्थित हैं।’

लोगोंके साथ यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी सर्वत्र समदर्शन और समभावको दृढ़ करनेके लिये नीचे लिखे अनुसार साधन करना चाहिये। जैसे मनुष्य अपने मस्तक, हाथ, पैर और गुदादिके साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और श्लेच्छादिका-सा बर्ताव करता हुआ भी अपना आत्मभाव

अर्थात् अपनापन समान होनेसे सुख और दुःखको समान ही देखता है, वैसे ही सब प्राणियोंमें देखना चाहिये। इससे यथायोग्य व्यवहार स्वाभाविक ही हो सकता है।

भगवान् स्वयं भी सबमें समभाव रखते हुए यथायोग्य व्यवहार करते हैं। इसका स्पष्टीकरण गीता अध्याय ९ श्लोक २९ में इस प्रकार किया गया है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

‘मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।’

गीता अध्याय १३ श्लोक ९ में भी भगवान् ने अनुकूलता और प्रतिकूलताकी प्राप्तिमें सदैव चित्तकी समताको ज्ञान-योगका साधन माना है तथा इसी अध्यायके श्लोक २७-२८ में भगवान् को सर्वत्र समभावसे स्थित देखनेवालेकी प्रशंसा की है और उसका फल परमगति की प्राप्ति बतलाया है।

वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदि अनित्य हैं। उनका आधार लेनेवाला, उनको अपना माननेवाला कोई भी साधक विषमताका त्याग और समताकी प्राप्ति नहीं कर सकता। ये सब भगवान् के विधानके अनुसार प्रभुकी कृपासे प्राप्त होते हैं। प्रभुकी प्रसन्नताके लिये ही उनका सदुपयोग करना चाहिये। उनसे सम्बन्ध करके उनके द्वारा सुख भोगनेकी इच्छा करना पतनका मार्ग है; क्योंकि कोई भी कामनायुक्त मनुष्य समतामें स्थित नहीं रह सकता। अतः साधकको आसक्ति, कामना, ममता और भयका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। इन सब दोषोंकी उत्पत्ति विषमतासे होती है और ये विषमताको दृढ़ करते रहते हैं। इसलिये साधकको इन सब दोषोंके नाश करनेके लिये संसार और शरीरको अनित्य और दुःखरूप समझकर उनसे वैराग्य करना चाहिये। गीता अध्याय ५ श्लोक २२ में कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

‘जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात्

अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता ।'

भगवान्की कृपासे प्राप्त हुई सामर्थ्य और पदार्थोंका प्रभुके लिये ही निष्कामभावसे सदुपयोग करनेसे भी आसक्ति-का नाश हो जाता है। उनमें ममताके त्यागसे नवीन आसक्ति नहीं उत्पन्न होती। इस प्रकार विद्यमान आसक्तिका नाश और नवीन रागकी उत्पत्ति न होनेसे अनायास ही समत्व प्राप्त हो सकता है; क्योंकि विषमताका कारण राग-द्वेष ही है।

सुख-दुःख, लाभ-हानि दिन-रातकी भौंति आने-जानेवाली वस्तु हैं। उनसे नित्य सम्बन्ध नहीं रह सकता। जिनसे नित्य सम्बन्ध नहीं रह सकता—उनमें ममता, आशा, कामना या उनसे भय करना सर्वथा भूल है। इस भूलके कारण ही अनेक प्रकारकी आसक्तियाँ, क्षोभ, क्रोध, लोभ, भय, व्याकुलता, अशान्ति आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अतः साधकको सुखमें आसक्ति और दुःखके भयको सर्वथा त्याग करके सदैव समतामें स्थित रहना चाहिये। इसके लिये भगवान्ने गीता अध्याय २ श्लोक १५ में कहा है—

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

‘क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! दुःख-सुखको समान समझनेवाले जिस धीर पुरुषको ये इन्द्रिय और विषयोंके संयोग व्याकुल नहीं करते वह मोक्षके लिये योग्य होता है ।’

अध्याय २ श्लोक ५६ में कहा गया है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

‘दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता; सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है ।

सुख-दुःखमें सम रहनेवाले साधकके राग-द्वेषका सहजमें ही नाश हो जाता है। अपनी इच्छाकी पूर्ति चाहने-वाला न तो सुख-दुःखमें सम रह सकता है और न अनुकूलता और प्रतिकूलतामें ही सम रह सकता है, फिर वह अन्य किसी परिस्थितिमें भी कैसे समभाव रख सकता है? इसलिये—

अनिच्छा, परेच्छा और स्वेच्छापूर्वक प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए सुख-दुःख, लाभ-हानि तथा अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थ और भावोंकी प्राप्तिमें राग-द्वेषसे रहित होकर समभावमें स्थित रहना चाहिये ।

समता तीन प्रकारकी होती है। परमात्माके स्वरूपकी, सिद्ध पुरुषके हृदयकी और साधकके कर्तव्यकी। गीता अध्याय ५ श्लोक १९ में परमात्माके स्वरूपकी, अध्याय ६ श्लोक ७-८-९ में योगी महात्माके हृदयकी और बारहवें अध्यायके श्लोक १८-१९ में भगवत्प्राप्त भक्तोंकी, चौदहवें अध्यायके श्लोक २४-२५ में गुणातीत महात्मा पुरुषकी, दूसरे अध्यायके १५वें श्लोकमें सांख्ययोगके साधककी, दूसरे अध्यायके ३८वें श्लोकमें सांख्ययोग और कर्मयोग तथा सब प्रकारके साधकोंकी और दूसरे अध्यायके ४८वें श्लोकमें निष्काम कर्मयोगके साधककी समताका वर्णन है। सिद्ध पुरुषके हृदयमें जो समताका भाव है, साधकके लिये वही साध्य है। इसलिये सब प्रकारसे मनुष्यको समताका साधन विशेषरूपसे करना चाहिये।

प्रियतम प्रभुकी सहज कृपा

लाभ-हानि, सुख-दुःख, प्रतिष्ठा-निन्दा और मान-अपमान।
हैं अनित्य ये सभी द्वन्द्व, या हैं प्रभुके ही रचित विधान ॥
मिलता जाता कभी न कुछ इनसे, या करते सब कल्याण।
प्रभुकी सहज कृपा अनन्तसे होता इन सबका निर्माण ॥
प्रभुके मङ्गलमय विधानपर मनमें रखो दृढ़ विश्वास।
कैसी भी स्थितिमें मत होओ कभी क्षुब्ध या तनिक उदास ॥
है जगका सब कुछ अनित्य, है दुःखपूर्ण सारा व्यापार।
बरस रही है सहज सुहृदतम प्रिय प्रभुकी नित कृपा अपार ॥

त्रिगुण-विजय

(लेखिका—श्रीमती डा० स्वर्णलता अग्रवाल, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

राष्ट्रपिता गांधीने जिस गीताको अपना पथप्रदर्शक बनाया और उनके सच्चे शिष्य एवं वर्तमान युगके संत विनोबा भावेने जिसे माताके समकक्ष रक्खा है, उस गीतासे यदि हम ज्ञान-कण प्राप्त करें तो अनायास ही जीवनको सुखी और सम्पन्न बनानेमें समर्थ हो सकते हैं। गांधीजीने लिखा है कि जीवनकी कोई समस्या नहीं जिसे गीता न सुलझा सकती हो। जीवनके प्रारम्भिक कालमें ही यदि बालकका चरित्र गीताके आधारपर ढाला जाय तो उसके भावी जीवनमें समस्याएँ उत्पन्न ही न होने पावें। गीतामें प्रयुक्त योग, संन्यास, भक्ति, ज्ञान आदि पारिभाषिक शब्द जीवन्मुक्त वैरागियोंके कामकी बातें नहीं, बल्कि हम सांसारिक गृहस्थोंके लिये हितकर एवं सरल मन्त्र हैं, जिन्हें अपनानेसे जीवन-यात्रा सरल एवं सार्थक बनायी जा सकती है।

गीतामें वर्णित तीन गुणोंकी समीक्षा करनेपर विदित होगा कि कितनी सरलतासे उनपर विजय प्राप्त करके चित्तको आनन्दित रक्खा जा सकता है। आवश्यकता है केवल दृष्टि-कोणको एक मोड़ देनेकी तथा सावधानीसे आचरण करनेकी।

जीवमात्रकी प्रकृतिमें तीन गुण होते हैं। जिस तरह आयुर्वेदमें कफ, पित्त और वात है, उसी तरह यहाँ सत्त्व, रज और तम—तीन गुण प्रकृतिमें भरे हैं। किसीमें किसी गुणकी मात्रा अधिक होती है, किसीमें किसीकी। अपने जीवनको ईश्वरमय बनानेके लिये आत्माको देहसे पृथक् करना आवश्यक है, आत्माको अलग तब किया जा सकता है जब कि सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंकी परीक्षा करके इनपर विजय प्राप्त करें। इन्द्रियनिग्रहके द्वारा एक-एक वस्तुको जीतकर अन्तमें मुख्य वस्तु अर्थात् आत्मसाक्षात्कारतक पहुँच सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिस्मृताः ।

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥

(गीता १४।५)

अर्थात् हे अर्जुन ! सत्त्व, रज और तम प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुण इस अविनाशी आत्माको शरीरमें बाँधते हैं।

तमोगुणप्रसूत दम्भ, काम, क्रोध, लोभ, मोह और आलस्य आदि मानसिक विकार मानव-प्रकृतिको आवृत करके

आत्माके स्वाभाविक गुण आनन्दका लोप कर देते हैं, जिससे अशान्ति और क्षोभकी उत्पत्ति होती है।

विवेकशीलता और संयमशीलताद्वारा त्रिगुण—सत्त्व, रज और तमपर विजय प्राप्त करके आत्मज्ञानसे हम हर स्थितिमें मनको शान्त रख सकते हैं।

संनियम्येन्द्रियग्रामं..... ।

.....मत्परः संयतेन्द्रियः ।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

अर्थात् इन्द्रियोंपर संयम करके जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञान-प्राप्तिसे शीघ्र ही अनन्त शान्तिको प्राप्त होता है।

तमोगुणके लक्षण हैं—आलस्य, निद्रा और प्रमाद; रजोगुणका प्रधान लक्षण है—लोभात्मक कर्मासक्ति, जिसके फलस्वरूप मनुष्यमें स्थिरता नहीं रहती और सत्त्वगुणका दूषित प्रभाव है—अभिमान। तीनों गुणोंपर विजय-प्राप्तिके हेतु उपर्युक्त मानसिक विकारोंपर विजय पाना आवश्यक है—अर्थात् आलस्य, निद्रा और प्रमादको उत्पन्न न होने देनेसे तामसी वृत्तिक निवारण होगा, लोभात्मक कर्मासक्तिको मिटानेसे रजोगुण नष्ट होगा और अहंभावको मनमें प्रवेश न करने देनेसे सत्त्वगुणसे मुक्ति मिलेगी। सत्त्वगुणसे भी विरत होनेकी वाञ्छा आश्चर्यजनक प्रतीत होती है, पर इसमें गूढ़ तथ्य है। प्रायः सत्कर्म करके मनुष्यके हृदयमें अभिमान हो जाया करता है, फिर वह दूसरोंसे अपनेको ऊँचा उठा समझने लगता है, इस अभिमानसे उसके शुभकर्मका कोई मूल्य नहीं रह जाता। इस दोषसे छुटकारा पानेका उपाय संत विनोबा ने गीता-प्रवचनमें बताया है कि यदि हम अपना स्वभाव ही सत्त्वगुणी बना लें अर्थात् सदैव स्वधर्मानुसार शुभ कर्म ही करें, पर-पीड़नका कोई कृत्य हमसे न हो, तो इसके लिये स्थान ही न रहेगा। नित्यप्रति हम भोजन करते तथा सोते हैं, तो ध्यानमें ही नहीं आता परंतु यदि किसी रोगीको कई दिनोंके बाद अच्छी नींद आवे या भूख लगे तो वह कहेगा कि आज मैं बहुत सोया या मैंने खूब खाया। इसी प्रकार स्वभावको सत्त्वगुणी बना लेनेसे अभिमान और दम्भकी उत्पत्ति नहीं होगी। अतः तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणसे ऊपर उठकर प्राणी आत्म-नन्द प्राप्त करता हुआ शाश्वत सुखका अधिकारी बन सकता है।

ये सभी बातें अत्यन्त साधारण एवं सरलतासे जीवनमें

उतारी जाने योग्य हैं, जिनके सहारे समस्त दुःखोंसे मुक्ति पाना सुलभ है। साधन है केवल विवेक और इन्द्रियनिग्रह।

अज्ञानसे उत्पन्न हुई तमोगुणी वृत्तिके बढ़नेसे इन्द्रियोंमें कर्तव्य-कर्मोंसे अरुचि और प्रमाद—अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि अन्तःकरणकी मोहिनी वृत्तियाँ प्रकट होने लगती हैं, जिनके प्रभावसे इन्द्रियाँ शिथिल होकर मानवको अन्धकारमें ढकेलती जाती हैं और अनेक दुःखोंकी सृष्टि होती है। इस स्थितिसे बचनेका उपाय है जीवनकी सुख-शान्तिको मिटानेवाले मूलतत्त्व आलस्य और उससे उत्पन्न निद्रा और प्रमादपर नियन्त्रण करना। शरीर और मनको स्फूर्तिमान् रखनेसे बुद्धि तीव्र और शुद्ध होती है, जिससे शरीर आरोग्य रहनेके साथ विचार शुद्ध और तेजस्वी बनेंगे। बुद्धि और शरीरका पूर्ण उपयोग न करना ही निद्रा है। शरीर एवं मनको विश्रान्ति

देनेके लिये अपने-अपने स्वास्थ्यकी स्थितिके अनुसार कुछ वृत्तोंकी नींद आवश्यक होती है; परंतु देरतक सोते रहनेसे जीवनमें पुरुषार्थ नहीं साधा जा सकता। निद्राशील मनुष्यका चित्त दक्ष और सावधान नहीं रह सकता, इससे प्रमादका जन्म होता है। अधिक नींदसे आलस्य बढ़ता है और आलस्यसे विस्मृति। विस्मृति अति भयंकर रोग है, इससे बुद्धिमें धुन लग जाता है, जीवन खोखला हो जाता है—

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

अर्थात् स्मृतिके भ्रमित होनेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का ह्रास हो जाता है। इस प्रकार सुखाकाङ्क्षी मनुष्य विवेक-शीलता और संयमसे सत्त्व, रज और तम—त्रिगुणोंपर विजय प्राप्त करके ही जीवनके सच्चे सुख और शान्तिको प्राप्त कर सकता है।

अर्चावतार

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

‘स्वामी दयानन्दजी बच्चे थे, तभी वे समझ गये थे कि मूर्ति भगवान् नहीं है और आप.....’

‘आप स्वामी दयानन्दजीकी बात नहीं कर रहे हैं’ उन विद्वान्को बीचमें ही रोककर मैंने कहा—‘आप तो बालक मूलशंकरकी बात कर रहे हैं इस समय। स्वामी दयानन्दजी तो वे बहुत पीछे हुए और आप भी जानते हैं कि स्वामी होनेके बाद भी कई वर्षोंतक दयानन्दजी शिवमूर्तिकी पूजा करते रहे हैं।’

‘किंतु उन्होंने मूर्तिपूजाका खण्डन किया है।’ मेरी बातको अवीकार करनेकी तो स्थिति थी नहीं। उन्होंने दूसरे ढंगसे अपनी बात कही—‘बचपनमें जिस सत्यका साक्षात्कार उन्होंने किया था.....’

‘वह सत्यका साक्षात्कार नहीं था, कल्पना थी।’ मैंने कहा—‘निर्णयका भार मैं आपपर छोड़ता हूँ। आप बताइये, यदि स्वामीजी आज जीवित होते और उनपर कोई बच्चा मुझीभर धूल फेंक देता तो वे उसे क्या डंडा लेकर मारने दौड़ते?’

‘आप भी कैसी बात कर रहे हैं।’ उन सज्जनने कहा—‘स्वामीजीने अपने प्रति किये गये बड़े-बड़े अपराधोंको भी

क्षमा ही किया है। उनका जीवन तो अद्भुत क्षमाशील रहा है।’

‘यह सत्य है कि श्रीस्वामीजी बड़े क्षमाशील थे, पर जिस सर्वशक्तिमान् क्षमासिन्धुकी अनन्त क्षमाका एक कण पाकर महात्मा संत क्षमाशील होते हैं, उस परमात्माकी क्षमाशीलताका अनुमान कोई कैसे कर सकता है।’ मैंने कहा—‘वही अनन्त करुणारूपालय अनन्त क्षमाशील परमात्मा अपनी मूर्तिपर चढ़कर घूमते और चढ़े हुए अक्षतको खाते एक चूहेको वैसा करने देता है, इससे मूर्तिमें ईश्वर नहीं है, ऐसा सत्य कहाँसे आ गया? आप आशा करते हैं कि अपनी ही सृष्टिके एक अवोध शिशुको, जो प्रसादसे उदरपूर्तिके प्रयत्नमें है, वह जगन्नियन्ता शिव त्रिशूल लेकर मारने दौड़गा?’

‘लेकिन मूर्ति तो परमात्मा नहीं है, वह तो.....’

‘निश्चय ही मूर्ति परमात्मा नहीं है, मूर्ति तो सदा ही जड़ होती है।’ मैंने बीचमें उन्हें फिर रोक दिया।

‘तब जड़की पूजा आप क्यों करते हैं?’ इस बार उत्साहपूर्वक वे बोले—‘पूजा तो चेतनकी की जानी चाहिये।’

‘यदि आपको मूर्तिकी ही पूजा करनी हो’ मैंने अपने ढंगपर उनसे पूछा—‘आप पत्थर, धातु, काष्ठ आदिकी

मूर्तियोंमेंसे कोई पसंद करेंगे या कसाईके यहाँसे मांस लाकर कोई मूर्ति बना दी जाय तो उसे ?'

'छिः !' नैष्ठिक शाकाहारी होनेके कारण उन्होंने नाक सिकोड़ ली । वे ऐसा ही कुछ करेंगे, यह आशा मुझे पहलेसे थी ।

'लेकिन आप धातु आदिकी मूर्तियोंके पूजनका विरोध कर रहे हैं और गुरु, माता-पिता आदि जिनके पूजनका प्रतिपादन करते हैं, उनके मांस-हड्डी-चमड़ेसे बने शरीरकी गंदी जड़ मूर्तिकी ही तो पूजा करते हैं आप । पूजाके लिये उनमें रहनेवाला चेतन कभी मिला है आपको ?'

'जड़ शरीरके माध्यमसे चेतनकी पूजा करते हैं हम वहाँ ।' मेरे वे सम्मान्य मित्र दर्शन-शास्त्रसे गुरुकुलके स्नातक हैं । इसलिये मेरी बात समझनेमें उन्हें कठिनाई नहीं हुई । वे स्वतः बोले—'बिना जड़के माध्यमके चेतनके साथ सम्पर्क नहीं बनाया जा सकता ।'

'माता-पिता आदिके शरीरमें चेतन जीव है । उस शरीरकी सेवासे उसे प्रसन्नता होती है । अतः शरीरकी सेवा उस शरीरमें रहनेवाले चेतनकी सेवा है । यह आपकी बात ठीक ही है ।' मैंने उनसे कहा—'ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी है और सर्वान्तर्यामी है । जो सर्वव्यापी है, वह मूर्तिमें भी है ही । मूर्तिकी पूजा करनेवाला अनीश्वरकी नहीं, मूर्तिके माध्यमसे ईश्वरकी पूजा करता है और यह बात ईश्वर जानता है । तब मूर्तिपूजा ईश्वरकी साक्षात् पूजा नहीं है, यह बात आप कहते कैसे हैं ?'

'अब आपसे फिर बात करूँगा ।' उन सज्जनने उस समय पिण्ड छुड़ाया और मुझे भी इससे प्रसन्नता हुई; क्योंकि मुझे भी दर्शन करने मन्दिर जाना था ।

× × ×

'मैया ! आज लालाके दर्शन नहीं करायेगी ?' उस दिन आनन्दीमाईके मन्दिरमें साढ़े ग्यारह बजेतक भी दर्शन खुले नहीं थे । श्रीबाँकेबिहारीजीके दर्शन करके श्रीराधा-वल्लभजीकी झाँकी करते मैं प्रायः प्रतिदिन आनन्दीमाईके मन्दिर आया करता था । यह बात आज नवीन थी, इतनी देर तो कभी नहीं हुई थी । मन्दिरके पट खुले थे; किंतु पर्दा हटाया नहीं गया था । भीतर श्रीआनन्दीमाई होंगी, इस आशामें ही मैंने पुकारा था । मन्दिरमें बाहर कोई उस समय नहीं था, मैं एकाकी दर्शनार्थी पहुँचा था ।

'लाला ! यह राधा मुझे बिकवाकर रहेगी !' वृद्धा आनन्दीमाई पर्देसे बाहर निकलीं तो उनका आजका स्वरूप देखकर मैं चकित रह गया । उनका गौर मुख क्षोभसे तमतमाया था । नेत्रोंमें क्रोधके साथ दुःख था । रुई-जैसे श्वेत केश बिखरे हुए थे । 'यह आज साड़ी पहिनकर नहीं दे रही है । इतना समय हो गया । लाला भूखा है और यह राधा.....'।'

यहाँ यह बता दूँ कि श्रीआनन्दीमाई व्रजराजकुमार श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र मानती थीं और श्रीवृषभानु-नन्दिनीको पुत्रवधू । उनके मन्दिरमें श्रीराधाकृष्णकी बड़ी सुन्दर मूर्ति है । पूजा नहीं—लाड़ लाड़ी थीं मैया उनका । व्रजवासी बालकोंसे मैयाका बहुत स्नेह था । प्रायः वे व्रजवासियोंके बालकोंको बुलाकर उन्हें भोजन कराती थीं तथा वस्त्रादि देकर उनका सत्कार करती थीं । वृन्दावन आनेके दो-तीन दिन बादसे ही मैं उनके मन्दिरमें दर्शन करने जाने लगा था । पता नहीं क्यों, मुझे भी वे एक व्रजवासी बालकके समान स्नेह करती थीं । वे भण्डार अथवा रसोईमें हों और मैं दर्शन करके चुपचाप चला जाऊँ तो बात दूसरी, अन्यथा देखते ही प्रसन्नतासे खिलकर कहतीं—'लाला आया ! लाला आया !' और किनका प्रसाद दिये बिना खाली नहीं लौटने देती थीं ।

'मैया ! कैसी साड़ी है यह ?' उष दिन मैयाका क्षोभ देखकर मैंने पूछ लिया; क्योंकि मुझसे बोलते-बोलते उनके नेत्रोंसे आँसू टपक पड़े थे । वे बहुत व्याकुल थीं और समझ नहीं पाती थीं कि क्या करें ।

'देख लाला ! तू ही देख ले ।' पर्देके भीतर जाकर एक लाल रंगकी रेशमकी सुन्दर-सी साड़ी वे ले आयीं । साड़ीपर हल्का-सा जरीका काम किया था । मैं जानता था कि मुझे उसका स्पर्श नहीं करना चाहिये; क्योंकि स्नान करके, रेशमी वस्त्र पहिनकर ही मैया मन्दिरमें जाती थीं । मैं झुककर देख रहा था और वे कह रही थीं—'अभी कल ही ले आयी हूँ । यह बुरी है क्या ? यह राधा इसे पहनकर नहीं देती है ।'

'मैया, सच बता; इस साड़ीको लेनेमें तूने कंजूनी तो नहीं की है ?' अचानक ही मैं पूछ बैठा । मेरी यह धृष्टता थी; किंतु उन महनीयाके वात्सल्यने ही मुझे धृष्ट बना दिया था । एक बात और—उनका अद्भुत वात्सल्य देखते हुए यदि

उनकी लायी साड़ी स्वीकार नहीं हो रही है तो यह कोई प्रेमका ही विवाद होगा, यह सहज अनुमान किया जा सकता था।

‘लाला ! मेरा अपना क्या है। इनके लिये ही तो मैं कुछ बचाना चाहती हूँ।’ उन वृद्धाके नेत्र इस बार उमड़ ही पड़े थे—‘अब मेरे पास बहुत थोड़ी पूँजी रह गयी है। साड़ी लेने गयी तो दूकानदारने कई साड़ियाँ दिखायीं, यह पच्चीस रुपयेकी है। एक दूसरी तैंतीस रुपयेकी थी। वे सहसा चुप हो गयीं।’

‘सच बता, तुझे वह दूसरी साड़ी बहुत अच्छी लगी थी न ?’ मैंने पूछ लिया।

‘वह थी तो बहुत अच्छी; किंतु यह भी तो बुरी नहीं है।’ बड़ा सरल सहज स्वर था।

‘लेकिन तेरी बहू अब इसे तो पहिनेसे रही।’ मैं हँस पड़ा—‘उसे तो वही साड़ी लेनी है, जो तुझे बहुत अच्छी लगी थी।’

‘लाला ! तब तू थोड़ी देर यहाँ बैठ !’ अनुनय करनेके ढंगपर उन्होंने कहा; क्योंकि मन्दिरका पट खुला था और वहाँ दूसरा कोई था नहीं। इस प्रकार सूना मन्दिर छोड़कर वे बाजार जा भी कैसे सकती थीं। मैं हाल आती हूँ।’

जल्दी-जल्दी उस साड़ीको तहाकर उन्होंने कागजके डिब्बेमें रक्खा, अपनी पूजाकी साड़ी बदलकर साधारण वस्त्र पहिने और बाहर निकल गयीं।

×

×

×

काश्मीरी ब्राह्मणोंका कोई परिवार अमृतसरमें बस गया था। उस परिवारको अपने जन्मसे इन्होंने धन्य बनाया है। किसीने मुझसे कहा है कि ये बाल-विधवा हैं। संतान हुई थी; किंतु रही नहीं। परिवारके लोग भी कालकवलित हो गये। खूब सम्पन्न घराना था। अपना सब कुछ बेचकर ये वृन्दावन आयीं तो इनके पास कई लाखकी सम्पत्ति थी। यह मन्दिर बनवाया और श्रीनन्दनन्दनको अपना पुत्र मानकर उसके लालन-लाड़नमें लग गयीं।

वह सम्पत्ति तो अबतक लगभग समाप्त हो चुकी है।

मुझे यह भी पता नहीं कि बतानेवालेका विवरण कितने अंशोंमें ठीक था; किंतु एक बात प्रत्यक्ष है और वह यह कि वास्तव्यभावकी अगाध सम्पत्तिकी ये स्वामिनी हैं।

वार्धक्यके कारण किञ्चित् स्थूल शरीर, शुभ्र गौर वर्ण, श्वेत केश एवं अत्यन्त श्वेत वस्त्रोंमें उनका झुर्री पड़ा, बड़े-बड़े नेत्रों तथा विशाल भालवाला दिव्य वपु देखते ही ‘मैया !’ कहनेको अपने-आप चित्त समुत्सुक हो जाता है। वे मूर्तिमान् मातृत्व लगती हैं।

मैं उनके सम्बन्धमें ही यह सब सोच रहा था, इतनेमें ही वे लौट आयीं। बिना एक शब्द बोले कागजका डिब्बा लिये अपने निवास-कक्षमें चली गयीं। मुझे लगा कि उन्होंने शीघ्रतापूर्वक दो-चार लोटे जल शरीरपर डालकर स्नान किया है। मन्दिरमें जानेवाले वस्त्र बदले और मन्दिरमें चली गयीं। यह सब करनेमें उन्हें कठिन-ईसे पाँच मिनट लगे होंगे।

‘देख लाला ! अब इसने अपने-आप कैसे झटपट यह साड़ी पहिन ली है।’ तीन-चार मिनटमें ही मन्दिरका पर्दा हटा दिया उन्होंने। आनन्दके आवेगसे उनका रोम-रोम प्रफुल्लित लग रहा था। नेत्र खिल उठे थे—‘आज कैसी सज गयी है यह !’

मैंने दर्शन किया। सचमुच श्रीराधाका श्रीविग्रह बहुत सुसज्ज था आज। नयी साड़ी अत्यन्त कलात्मक ढंगसे पहिनी गयी थी। तीन-चार मिनटोंमें इतने अच्छे ढंगसे वस्त्र-सज्जा हो सकती है, सोचकर आश्चर्य होता है। मैया कह रही थीं—‘तू नेक रुका रह। मैं झटपट भोग लगाती हूँ। आज यहीं प्रसाद लेना है तुझे।’

मैंने देखा नहीं था कि मन्दिरमें पर्देके पीछे क्या हुआ था; किंतु श्रीआनन्दीमाईने यही तो कहा था—‘इसने अपने-आप कैसे झटपट साड़ी पहिन ली है !’ वहाँ भीतरसे ये दोनों श्रीविग्रह सजीव-साकार उठे हों, अद्भुत बात तो नहीं है। प्रतिमा भगवान्की मूर्ति नहीं है, वह अर्चावतार है, साक्षात् भगवान् हैं, यह बात उस दिन समझमें आयी। लेकिन अपने उन मित्रको क्या समझा पाऊँगा कि मेरे सम्मुख ही अर्चावतारने अपनी लीला प्रदर्शित की ? वे इसे समझ पायेंगे ?

श्रीभगवन्नाम-जप

[तैंतीस करोड़से अधिक मन्त्र अथवा पाँच अरबसे अधिक नाम-जप]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम् ।

पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम् ॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

‘मधुरोंमें भी मधुर, मङ्गलोंमें भी मङ्गल और पावनों (पवित्र करनेवालों) में भी पावन केवल हरिनाम ही है। हरिनाम, हरिनाम, केवल हरिनाम ही कलियुगमें गति है। अन्यथा गति नहीं है, गति नहीं है, गति नहीं है।’

बड़े ही हर्षकी बात है कि ‘कल्याण’ में प्रकाशित निवेदनके अनुसार ‘कल्याण’के भगवत्प्रेमी पाठक-पाठिकाओंने बड़े चावसे भगवन्नाम-जप किया है और दूसरोंसे करवाकर उनकी परम सेवा की है।

‘कल्याण’ की प्रार्थनापर इस वर्ष जो जप हुआ है, इसके सम्बन्धमें निम्नलिखित निवेदन है—

(१) इस वर्ष भी केवल भारतवर्षमें ही नहीं, बाहर विदेशोंमें भी जप हुआ है।

(२) इसमें केवल उपर्युक्त सोलह नामोंके महा-मन्त्रकी ही संख्या जोड़ी गयी है। भगवान्के अन्यान्य नामोंका भी बहुत जप हुआ है, वह इस संख्यासे पृथक् है।

(३) बहुत-से भाई-बहिनोंने जप अधिक किया है, सूचना कम भेजी है और कुछ नाम-प्रेमियोंने तो केवल जप करनेकी सूचना भर दी है, संख्या लिखी ही नहीं।

(४) कुछ भाई-बहिनोंने केवल जप-संख्या ही नहीं लिखी है, उत्साहवश नाम भी लिखे हैं।

(५) बहुत-से भाई-बहिनोंने आजीवन नाम-जपका नियम बना लिया है, इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

(६) स्थानोंका नाम दर्ज करनेमें यथासाध्य सावधानी बरती गयी है। इसपर भी भूल होना एवं कुछ स्थानोंके नाम छूट जाना सम्भव है। कुछ नाम रोमन या प्रान्तीय लिपियोंमें लिखे होनेके कारण उनका नागरी रूपान्तर करनेमें भूल रह सकती है, इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

(७) सोलह नामोंके पूरे मन्त्रका जप हुआ है—

३३,०७,९७,०५० (तैंतीस करोड़, सात लाख, सतानवे हजार पचास)। इनकी पूर्ण नाम-संख्या होती है—
५,२९,२७,५२,८०० (पाँच अरब उन्तीस करोड़ सत्ताईस लाख बावन हजार आठ सौ)।

(८) १०९७ स्थानोंसे आयी सूचना दर्ज हुई है।

स्थानोंके नाम इस प्रकार हैं—

अकबरपुर, अकौना, अगवानपुर, अचलजामू, अचल-बाड़ी, अछनेरा, अजमेर, अटेहा, अतरहट, अन्धरिया, अपरतुनवाला, अपरसहारी, अरहर, अभअंबिका, अम्बरपुरम्, अम्बाजोगाई, अम्बाला, अमरगढ़, अमरवाड़ा, अमरेली, अमरौधा, अमलापुरम्, अमलिहा-बसनिहा, अमृतसर, अरई, अरसाना, अराखापटवा, अरुबिक्करा, अलवर, अलीगढ़, अलीगंज, अलीपुरदौर, अल्लूपुरम्, अशोकनगर, असावटी, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहिरी, अहिल्यापुर, आखेरी, आगर, आगरा, आजमगढ़, आदीग्राम, आनन्दनगर, आबगिला, आबूरोड, आमीअकिलपुर, आरम्भा, आरसुर, आरावाका, आबादपुर, आसनसोल, इच्छेवास्ते, इचलकरजी, इचौली, इटकीअंतरगांव, इटावा, इटौजा, इटौरा, इन्डाली, इन्दौर, इब्राहिमपुर, इलाहाबाद, ईडर, ईतागढ़, उज्जैन, उड़नखेड़ी, उड़ियानपुर, उडुम्पि, उत्तरकाशी, उदईपुर, उदयपुर, उदयपुरा, उदलवन्त, उदौरा, उदंगवा, उधना, उन्नाव, उप्पालुस, उपालोर, उमधा, उमरकोट, उमरसण्डा, उमरियईसरा, उमरी, ऊधना, ऊना, एकडंगा, एकमा, ए० पी० ओ०, ऐचर, ऐझीकोटवा, ओखलदंगा, ओझागंज, ओड़वारा, ओमनगर, औरंगाबाद, औराटार, अंकोला, आंतरदा, ककवारा, ककिन्दा, कच्छ, कचनार, कजरा, कट-घरवा, कटपाडी, कड़विन्दा, कन्डी, कन्हईपुर, कन्हौली-गजपति, कनखल, कपासन, कमसिन, कमासी, करजान, करमसद, करसौत, करेली, करोम, करौली, कल्याण, कल्हेर, कलईगढ़, कलकत्ता, कलेद, कलौली, कवठल, कवलास, कसया, कसरावद, कसिहा, कसौली, कहनुवान, काकीनाड़ा, कागड़ा, कागूपाड्ड, काठ, काडा, कादीवली, कानपुर, कामठी, कामदेवपुर, कारंजा, कालिम्पोंग, काली, कावर,

कावाली, कासगंज, किला, किलपांक, किशुनगंज, कुकनूर, कुकसी, कुजरोद, कुडेच, कुदरकट, कुदूग्राम, कुण्डल, कुपडी, कुम्हरिया, कुमहर, कुर्माहाट, कुरनूल, कुरुम, कुरेडी, कुलू, कृष्णापुर, केशरवारा, कैकलूर, कैथवली, कैथा, कैलासगढ़, कौंच, कोचरापाड़ा, कोचीन, कोझीकोड, कोटयाम, कोटा, कोटेतरा कोटायम, कोठ, कोठीचारकला, कोन्हर, कोपैडिया, कोयम्बटूर, कोराने, कोरैयागंज, कोरैया-जंगल, कोरोरावपुर, कोल्हापुर, कोलकुलपल्ली, कोलिहा-देवरी, कोलीगवली, कोसमी, कंकरखेड़ा, कंवर, कोंकरपुर, कोंकरोली, कोंकर, खड़हरा, खड़रटीकतपुरा, खडौआ, खण्डवा, खम्हौली, खरगपुरअरसारा, खरदा, खरोआ, खरोसा, खलपुरा, खलीफा, खलीलाबाद, खसीहाकलौ, खामापट्टी, खातेगाँव, खामोदर, खालिफता, खालिसपुर-डूहिया, खासपट्टी, खुरजा, खुशनामपुर, खूखूतारा, खूगली, खूसरूपुर, खेरटवा, खेरागढ़, खोपली, खोरी, खौबी, गगलाचेररा, गढ़वा, गदीपुर, गनियारी, गया, गर्चा, गरिया-बन्द, गरीबा, गहलौ, गाजीपुर, गाडखारा, गादिया, गारू, गासपुर, गिडोह, गीधा, गुजरा, गुड़नारी, गुडेवल्लूर, गुन्दूर, गुना, गुरडोल, गुरुदासपुर, गुरुठगी, गुलीबिनदादा, गुलौली, गूजरी, गून्थला, गेन्डाली, गोहिरा, गोटीयेरिया, गोडहिया, गोडूहिया, गोण्डल, गोन्डिया, गोनीन, गोविन्दनगर, गोमत, गोरखपुर, गोरावरडीह, गोहद, गौलखेड़ा, गौसपुर, गंगानगर, गंगापुर, गंगोद, घरसारा, घाटमपुर, घाटौल, घासीपुरा, घुघचिहाई, घुनवलिया, घुमनी, घोघरडीहा, चकिया, चकुरियापाल, चकौध, चदोघर, चन्डीगढ़, चन्द्रपुरा, चन्दा, चनपटिया, चनायनबान, चम्पानगर, चम्पारण, चाईवासा, चाटियाखेड़ी, चान्दपुर, चान्दपुरा, चान्दीगढ़, चान्दूर, चाण्डोल, चायबासा, चालिसगाँव, चिखलीबड़नगर, चितगाँव, चितावद, चिलवारेया, चिरैली, चीतूर, चींगला, चुनार, चेरियावटियारपुर, चैनपुर, चौसावाजार, चौदहा, छत्तरपुर, छतीसगढ़, छपरा, छिन्दवाड़ा, छीलरो, छोरहिया, छौलापुर, ज्वालापुर, जक्कनपुर, जगदलपुर, जगदीशपुर, जगन्नाथपुरी, जगनेर, जड़ोल, जदवापुर, जनपदा, जबलपुर, जबूसर, जम्मू, जम्मूकाश्मीर, जम्मूतवी, जम्मूवार, जमशेदपुर, जमालीपुर, जयपुर, जरगाँवा, जरवल, जसमौर, जसवाडी, जहाँगीराबाद, जागपुर, जाटूसाना, जानसठ, जामनगर, जालन्धरशहर, जावडपुर, जीवगुम्या, जुगलीरायगढ़, जुन्हैया, जुनिहुबली, जुल्फीपुरमोदनगंज, जुवादा, जूनागढ़, जेतलसर, जोधपुर,

जोनिका, जंहार, जंगलवैटी, झबुआ, झरसुगुडा, झरिया, झलोखर, झाबुआ, झालरापाटन, झालू, झासडी, झाँसी, झिकटिया, झिल्लीघाट, झनियाकली, टकरियापंथ, टिमरनी, टिस्कौलूर, टीकमगढ़, टीला, टुण्डला, टुनवाला, टेडी, टेप्पाकुलम, ठठिया, डड़वाड़ा, डभरा, डवासीकुदाल, डहिया, डामलापुर, डिठोरा, डूंगरपुर, डूंगराकलिम्पोंग, डुमरियाबुजुर्ग, डूवावाड़ा, डोम्हाटोला, डौड़ी, ढला, ढाणकी, दीपरी, देकही, देरी, ढोरा, ढौंड, तरीयाकया, तामसेनगंज, तारापुर, तालडीह, तिमिरिया, तियरा, तिर्वापुराना, तिरको, तिराड़ी, तीरूपटी, तिरोदी, तिलकपुर, तीलायवाड़ी, तुनहा, तेतली, तेहरामजूरपुर, थाना, थामसेनगंज, थैली, दड़माड़, दत्तेवाड़ा, दबधुवा, दवीयानाबगला, दखेगिरि, दराजी, दहिआवाटोला, दहौरा, दाजीलीव, दारापुर, दालीराधारा, दिगांव, दिल्ली, दीनाजपुर, दुधवाखारा, दुबाला, दुमका, दुमलहर, दुमिगो, दुर्ग, दुर्गाडीह, दुर्गाविती, देकुलीधाम, देवीधूरा, देवगढ़, देवगाँव, देवघरा, देवनन्द, देवरापल्लि, देवरी, देवा, देवास, देहरादून, दोन, दौलाखाराम, धागध्रा, धनगाँवा, धनपुरी, धनवाद, धनवाही, धनौड़ा, धमनापायत, धमनी, धरणगाँव, धरान, धरोनिया, धामड़गाँव, धार, धीकुटा, धुबुलिया, धौरपुर, धौलपुर, नई दिल्ली, नगला-उधैया, नगरह, नगलाबिरखू, नगासगंज, नन्दग्राम, नन्दन, नरबन, नरसिंहगढ़, नरसिंहपुर, नरहन, नल्लाजेरला, नलोरा, नवाबगंज, नससलागंज, नाउरदेवर, नागझरी, नागपुर, नागलपुर, नादगाँव, नादेड, नानीवावड़ी, नापासर, नारदीगंज, नारायणगढ़, नारायनपुर, नाशीक, निमलोटी, निर्मल, निरपुरलालपुरा, नेडनूर, नेपालगर, नेपालतराही, नेमिनीकुरु, नैकुल, नैनी, नैनीताल, नैमिषारण्यतीर्थ, नोहर, नौदझील, प्रतापगढ़, प्रतापनगर, प्रागपुर, पचपतरा, पट्टन, पटना, पटरापाली, पटवतरा, पटियाला, पटुली, पठकौली, पड़रिया, पड़ियल, पदमावतीपुर, पनगटा, पनपूड़ी, पनहास, पम्पाजोधा, परकोटा, परतेवा, परतवाड़ा, परमणी, परली, परसदा, परसाडीह, परसौनीदेवाजी, परिमाँवा, परेवावैश्य, पलटा, पलरा, पलामू, पलियाकला, पवनी, पवारखेड़ा, पहाड़पुरा, पाउडी, पाडकी, पातूल, पाताचेयरकुर्सी, पान्डेगाँव, पान्डेडोला, पान्डेपुरउत्तरटोला, पानागढ़, पारगी, पारडी, पारलीबैजनाथ, पाराभवानीपुर, पात्रपुर, पिथोरगढ़, पिपराहा, पिपरौना, पिपरौली, पीपरतराई, पीपरादेवस, पीपलराया, पीपलवाड़ा, पीलयाकला, पुखराया, पुडुकोकई, पुनाल्दूर,

पुरवा, पुरहिया, पुरानाहुपली, पुरी, पुरुलिया, पुलिपुर,
 पूजापुरा, पूना, पूवायां, पेण्डरा, पैची, पैडगुंमल, पोठिआ,
 पोरबन्दर, पोरावा, पौबेनुआधी, फकीरकोड़ापुर, फगवाड़ा,
 फतहपुर, फतेहपुर, फरह, फरहदा, फरहमा, फलोदी, फागी,
 फागुनागाँव, फिरोजपुर, फिरोजाबाद, फुटिया, फुलपरास,
 फुलवरिया, फेयरफील्ड, फैजपुर, फैजाबाद, फोर्टबेलार,
 बखरीबाजार, बघरा, बज्रंगपुरा, बट्यागढ़, बड़गाँव,
 बड़वानी, बड़हरवा, बड़ामहरोली, बडोल, बड़इयाटोला,
 बदनावर, बदपुर, बदायूँ, बन्धा, बन्धुगंज, बम्बई,
 बहरमापुर, बरूधन, बरेजी, बरेली, बरोडा, बरौंधा, बरौर,
 बल्लभनगर, बल्लारि, बल्लिगाँव, बल्लुआ, बस्की, बस्ती,
 बहराइच, बहरामपुर, बहलालपुर, बहादुरपुर, बहेरकुआकोह,
 बागडिया, बागडोली, बागपिपरिया, बागमली, बागलकोट,
 बाढ़, बादा, बाबरकोट, बाबल, बामौर, बार,
 बारपाली, बाराबजार, बारू, बालजमुन्द, बालबंगरा,
 बालाकोट, बालूगंजमथरच, बासी, बिछवां, बिदिशा, बिरेचा,
 बिरोल, बिहटा, बीकानेर, बीजापुर, बुढ़ाकोट, बुनियादगंज,
 बुरुड़गाँव, बुलन्दशहर, बेनकनहकी, बेमेतेरा, बेमौते,
 बेलमंडई, बैकुण्ठपुर, बैजापुर, बैतुलगंज, बैहामुडा,
 बोमदिला, बंगलोर, भगवतीपुर, भटगामा, भदेवाँ, भदैनी,
 भदौल, भन्डरिया, भमरहा, भयावाड़ी, भरथौली, भरावदा,
 भरोसा, भलेपुर, भवई, भवनगर, भवनाथपुर,
 भवानीपाटणा, भवानीपुर, भागलपुर, भाटपारा, भारकल,
 भारनी, भारपचनाला, भावनगर, भावनीपुर, भिकड़गाँव,
 भिकी, भिन्ड, भिनाप, भिपु, भिवानी, भीगलपुर, भीटी,
 भीडी, भीपल, भीपन्डी, भीमडास, भीमताल, भीलवाड़ा,
 भीषमपुर, भुवनेश्वर, भुरका, भुसावल, भूडरी, भैसड़ी,
 भोपाल, भउआइमा, मकथक, मटियारी, मदन,
 मद्रास, मथुरा, मथौलीबाजार, मदन, मदुरा, मधवापुर,
 मधुबनी, मधुबनीकलाशाला, मधुसूदनगढ़, मन्डया,
 मन्डला, मनफरा, मनीपुर, मनीकुप्याम, मनीबाजार,
 मनोहरपुर, मरथना, मरथौली, मरीकुपन, मल्लीबाजार,
 मलकापुर, मलङगाँव, मस्की, मस्तीचक, महेदेवा, महनार,
 महम्मदपुरबदल, महाराजपुर, महाराजपुरमंडला, महारानी-
 पेडा, महारौनी, महलांकामानपुरा, महुआवा, महु, महेन्दू,
 महेशपुर, महोबा, माचरमाटे, माण्डया, माण्डला, माँडावाला,
 माधोगंज, माधोपाली, माधोसिंहपुरा, मानपुर, मानपुरन-
 रिया, मालीनगर, मालीपुर, मासोद, मिर्जागंज, मिर्जापुर,

मिसरोद, मीआग्रामकरजन, मीठापुर, मीनावदा, मुकुन्दपुर,
 मुजफ्फरनगर, मुजी, मुँगेर, मुण्डगाँव, मुपली, मुरादनपुर,
 मुरादपुर, मुरादाबाद, मुलौली, मुहीद्दीनपुर, मूदी, मेगलोर,
 मेनगर, मेदिनीपुर, मेरठ, मेराल, मेलमपूडी, मेहदावल,
 मैगा, मैडीकांडा, मैनपुरी, मैसालाटेन, मैसूर, मोकलवाड़ा, मोटा,
 मोढ़ा, मोतनाजे, मोतीनगर, मोतीहारी, मोदनगंज,
 मोयाखेड़ा, मोरदाकेवड़ी, मोरवी, मोरराकेवड़ी, मोहदपुर,
 मोहना, मोहबना, मौधिया, मौवेमुआफी, मंगरौल, मंगलोर,
 मंगोलापुर, यवतमाल, येबला, रणजीतपुर, रतिया,
 रविनुथला, रसेन, रहली, रहावलीउबारी, राँची, राजकोट,
 राजगढ़, राजपिथरी, राजाखेड़ा, राधाउर, रानीखेत,
 रानीपुर, रानीपुल, रानीबाग, रापेड़, राबकांबी,
 रामघाट, रामचन्द्रपुरम्, रामनगर, रामनाद, रामपुर,
 रामपुरकसिहा, रामपुरचाय, रामपुरबुशेहर, रामबन, रायगढ़,
 रायचुर, रायपुर, रायला, रारजगाँव, रावतगीव,
 रासवाडिकपुर, रासाडीर, रिछा, रीवाँ, रूड़की, रूड़नी,
 रूपनगर, रूपसागर, रूपौली, रेंका, रेडमा, रेणुकानाहनद्वारा,
 रेणूकूट, रेहलू, रोदीभयर, रोहिणी, रौडा, रौनिया,
 रंगवासा, लखनऊ, लखीमपुरखीरी, लत्ता, लदुना, लश्कर,
 लसाड़िया, लहरनिया, लाखागुढ़ा, लापनगर, लालपुर,
 लालपुरा, लिसाढ़, लीणावला, लीमड़ी, लेगनूर, लेसवा,
 लेहियाबाजार, लोड़खेड़े, लोनावला, लोहा, वडगाँव,
 वडहिया, वणी, वत्सघना, वमोत, वर्धा, वर्नपुर,
 वरकतपुर, वरुअटा, वरौंधा, वल्पात्रापेट, वहनपुरा,
 वाणीपुर, वानखेड, वाराणसी, वालोन, वासोदा,
 विजनौर, विजयगढ़, विजयनगरम्, विजयावाड़ा, विजवार,
 विजोलिया, विडायल, विल्लीपितूर, विलखी, विलासपुर,
 विलेपाले, विष्णुपुर, विशाखापट्टम्, विष्णुगढ़, विष्णुपुर,
 विस्वात्रिज, विहटा, वीरसिंहपुर, बुरहानपुर, वृन्दावन,
 वेंगवाड, वेंगूसराय, वेपल्लि, वेमुला, वेल्लूतूर, वेल्लिपाविडा,
 वेहटा, वैजनाथ, वैसाडीह, श्रीकंकुलम्, श्रीङ्गरगढ़,
 श्रीरामपुर, श्रीवैकुण्ठम्, श्यामदेउरवा, शकूरबस्ती, शर्मिष्ठापुर,
 शरफुद्दीनपुर, शहरना, शाजापुर, शामगढ़, शाहपुर,
 शाहपुरा, शिकारीनार, शिछापुर, शिरपुर, शिलकोट, शिवगंज,
 शिवपुरी, शिवली, शीखपुरी, शेखपुखरी, शेरभुक्का,
 शोहरतगढ़, शंखलपुर, शंखेरा, सगरा, सगारा, सगुनी,
 सड़रा, सढ़वारा, सतना, सलकई, सपताचक, सबलपुर,
 समदागढ़शाहेबाना, समेशर, सरगुजा, सरसईनावर,
 सरायभावसिंह, सरिया, सरेडीबड़ी, सरेया, सरोनिया, सलगा,

सवाईमाधोपुर, सहारनपुर, सहावर, सहिया, सागर, सातपाटी, सांडिया, सांतसुक, सांधिनी, सारन, सालमखेड़ी, सावल, साहेवान, सिकरापुर, सिकरिया, सिकन्दराबाद, सिधोला, सिधौताली, सिजौरा, सिन्डी, सिंहपुर, सिसदेवरी, सिंपरौल, सियानंद, सिरविदा, सिरसोला, सिरौज, सिलदर, शिवनी, सिहोरा, सीकर, सीधयकला, सी० डी० ब्लाक, सीतापुर, सीतामऊ, सीतारामपुर, सीहोर, सुकुमार, सुजानगढ़, सुजानपुर, सुन्दरगढ़, सुन्दरपुर, सुनीजा, सुल्तानगंज, सुगरी, सूवेदारी, सूर्यपूरा, सूरजपुर, सूरैयाबाजार, सेमरियारिविलगंज;

सेलोयपार, सेहुणा, सैजना, सैदपुर, सोढ़, सोनकरसा, सोनगाँव, सोनपुर, सोनीपत, सोल्हनी, सोलापुर, सोहन्दरहाट, सौदला, संकुई, संगारेड्डी, सांगोद, हटनी, हथनारा, हथियर, हथिया, हथुआ, हण्डिया, हनुपाननगर, हफीजाबाद, हबीबपुर, हमीरपुर, हरगाँव, हरचना, हरजीपुर, हरदा, हरदेई, हराड़वा, हरिस्थान, हरिहरपुर, हलद्वानी, हस्वा, हसनगंज, हसुआ, हाजीपुर, हाटी, हाँफा, हारीज, हिंडोरिया, हुमायानगर, हैडीपाली, हैदरगढ़, हैदराबाद हैदरनगर, होरमा।

नाम-जप-विभाग—‘कल्याण’ कार्यालय, गोरखपुर

राष्ट्र-लक्ष्मी

(लेखक—डा० श्रीरवीन्द्रजी अग्निहोत्री एम० ए०, बी० टी०, पी० एच्० डी०)

विश्वविख्यात पशुविशेषज्ञ डा० राइटने सन् १९३५ ई० में प्राप्त आँकड़ोंके आधारपर घोषित किया था कि गोवंशसे भारतको जो आय प्रतिवर्ष होती है, वह ११ अरब रुपयेसे अधिक है। यह गणना करते समय उनके समक्ष सन् ३५ की चीजोंके भाव थे, जिनमें आज पाँचगुनेसे लेकर दसगुने तककी वृद्धि हो चुकी है। अतः उक्त गणनाके आधारपर ५५ अरबसे लेकर ११० अरब रु० वार्षिक तककी आय गोवंशसे हुई; पर चूँकि सन् ३५ से अबतक अबाध रूपसे गोवंशका वध किया जा रहा है और उचित पोषणके अभावमें भारतीय गायकी दूध देनेकी क्षमतामें भी ५० प्रतिशत तक हास हुआ है, अतः गोवंशसे होनेवाली आयमें भी आश्चर्यजनक अन्तर आ गया है। पर फिर भी यह उपेक्षणीय नहीं है। आज दूध और दूधसे बनी चीजोंसे ६ अरब २० करोड़ रु० प्रतिवर्ष आय होती है। गोबरकी खादसे १००० करोड़ रु० वार्षिककी आय होती है^१। यह सम्मिलित आय है। केवल गोवंशसे आज भी २५ अरब रु० वार्षिक आय होनेका अनुमान है जैसा कि अखिल भारतीय गोरक्षासम्मेलन वृन्दावनमें एक वक्ताने बताया था। यह अल्प राशि भी हमारी समस्त राष्ट्रीय आयके चौथाई भागसे अधिक है। इतनी आय अन्य किसी भी एक स्रोत (item) से नहीं हो रही है। इसपर भी सरकारसे मोटी-मोटी तनख्वाह पाने-वाले तथाकथित पशुविशेषज्ञोंने देशमें ‘अनुपयोगी पशुओं’ का भूत खड़ा कर रक्खा है। उनका कहना है कि देशमें

अधिकांश गौएँ कम दूध देनेवाली हैं, बैल कमजोर हैं, अतः इन्हें रखनेके स्थानपर कटने देनेमें ही लाभ है। वास्तविकता यह है कि इन लोगोंका यह कथन सर्वथा भ्रामक, निराधार अतएव असत्य और अनुत्तरदायित्वपूर्ण है। सरकारी आँकड़े स्वयं यह बताते हैं कि देशमें २ या ३ प्रतिशतसे अधिक तथाकथित अनुपयोगी पशु नहीं हैं। यह सत्य है कि भारतकी अधिकांश गौएँ कम दूध देनेवाली हैं और जब हम यह देखते हैं कि नीदरलैंडकी गाय औसतन ८००० पौंड, आस्ट्रेलियाकी ७००० पौंड, स्वीडनकी ६००० पौंड और अमेरिकाकी ५००० पौंड दूध वर्षभरमें देती है; पर भारतकी गाय वर्ष भरमें केवल ४१३ पौंड दूध देती है^२ तो बड़ी लज्जाका बोध होता है; और यह देखकर तो अपनी हीन दशापर ग्लानि अनुभव होती है (क्योंकि यह वस्तुतः हमारी ही उपेक्षाका परिणाम है) कि अन्य देशोंकी गौएँ दूध देनेकी अवधिमें सामान्यतः ३००० से ४००० पौंड तक दूध देती हैं; पर भारतकी गौएँ साधारणतः केवल १५०० पौंड ही दूध देती हैं^३। गायकी दुग्धोत्पादकतामें कमी होनेका ही परिणाम है कि आज बैलोंमें अधिक काम करनेकी क्षमता नहीं। पर विचारणीय यह है कि इस अनुपयोगी गोवंशकी विद्यमानतामें प्रतिव्यक्ति उपलब्ध दूध केवल ५०८ औंस है, (जिस भारतमें घी-दूध आदिकी नदियाँ बहती थीं उसकी इस पतित एवं अवन्त दशापर जरा ध्यान दीजिये। जरा

२. देखिये Indian year book 1964, Hind pocket book. pp. 150. 151।

३. पूर्वोक्त।

१. देखिये श्रीरवीन्द्रकुमार विद्यालंकारद्वारा सम्पादित

‘भारतज्ञानकोष’ १९६४।

तुलना भी कीजिये—न्यूजीलैंडमें प्रतिव्यक्ति उपलब्ध दूध २४४ औंस और डेनमार्कमें १४८ औंस है। यदि इन विशेषणोंके कथनानुसार 'अनुपयोगी' गायोंको नष्ट कर दिया जाय तो फिर भारतमें दूधका दर्शन भी दुर्लभ हो जायगा। खेतीके लिये भारतमें पहले ही दो करोड़ बैलोंकी कमी है। अगर विद्यमान बैलोंको कमजोर, अतएव अनुपयोगी बताकर समाप्त कर दिया जाय तो भारतमें खेती असम्भव हो जायगी; क्योंकि सरकारी अनुमान है कि बैलोंको हटाकर उनके स्थान-पर ट्रैक्टरसे काम लेनेके लिये ७० लाख ट्रैक्टरोंकी आवश्यकता होगी और फिर प्रतिवर्ष दस लाख ट्रैक्टरोंकी व्यवस्था करनी पड़ा करेगी। हम दावेके साथ कह सकते हैं कि भारत-सरकार मौजूदा गोवंशको अनुपयोगी बताकर नष्ट भले ही कर दे, पर ७० लाख ट्रैक्टरोंकी व्यवस्था करना उसके लिये आकाश-कुसुम-चयनमात्र है। एक बात विचारणीय यह भी है कि क्या ये ट्रैक्टर खेतीके लिये खाद भी दिया करेंगे? (ये अनुपयोगी पशु तो केवल गोबरकी खादसे ही १००० करोड़ रु० वार्षिक आय करा रहे हैं।) क्या ये ट्रैक्टर पौष्टिक खाद्यपदार्थके रूपमें दूध और घी भी दिया करेंगे? क्या एक बार धन लगा देनेपर इनकी संतति क्रमशः बढ़ती ही जायगी?

‘इन अनुपयोगी पशुओंको समाप्त करनेके पश्चात् आवश्यक मात्रामें उपयोगी पशु ला दिये जायेंगे’—ऐसा विश्वास दिलाना उसी वायदेके समान है जो हिंदी आन्दोलन बंद कर देनेके पश्चात् ही हिंदीको ‘संवैधानिक पूर्ण अधिकार’ देनेके लिये सरकारकी ओरसे किया गया था। अपनी जिस भूलके लिये हमें आजतक पश्चात्तापकी अग्निपरीक्षा देनी पड़ रही है, उसकी पुनरावृत्ति करनेको हम उद्यत नहीं। यदि सरकार यह चाहती है कि हम इस सारे गोवंशको उसके कथनानुसार अनुपयोगी मानकर उसके हवाले कर दें तो उसे पहले दो काम करने होंगे। सबसे पहले तो इस गोवंशके बदलेमें देशकी आवश्यकताभर उपयोगी गोवंश प्रदान करना होगा। दूसरे, उसे अपने उस सारे रिकार्डको झूठा सिद्ध करना होगा जिसके अनुसार ‘अनुपयोगी पशु’से भी सामान्यरूपमें २२) रु० से लेकर २७) रु० तकका वार्षिक लाभ होता है और जिसे आधुनिक विज्ञानकी सहायतासे १३६०) रु० वार्षिक तक बढ़ाया जा सकता है, मुफ्तकी बिजली और खादका मूल्य पृथक् रहा। यदि वह ऐसा

करनेको उद्यत नहीं तो क्यों न हम उसकी ‘लोक-कल्याण-प्रवृत्ति’ पर संदेह करें? दूध नापैद हो जाने और खेती असम्भव हो जानेपर फिर यहाँ बचेगा कौन? मिट्टी फाँककर तो ये विशेषज्ञ भी जीवित नहीं रह सकेंगे!

ये अनुपयोगी कहे जानेवाले पशु देशके लिये वरदान हैं, अभिशाप नहीं। अपनी आयुके अन्तिम दिनतक प्रत्येक पशु गोबर और मूत्र देता है। यदि गोबर और मूत्रका ठीक उपयोग किया जाय तो यह स्वयं बहुत बड़ी सम्पत्ति है और इसकी खादसे हम अपने कृषि-उत्पादनको पच्चीस गुनातक बढ़ा सकते हैं। सरकारी पशुगणना-रिपोर्ट १९५५-५६ के अनुसार देशमें गोवंशका प्रतिदिन ६८,३९,३०० मन गोबर होता है। इससे कुछ कम गोमूत्र होता है। नेशनल इनकम कमेटी १९५१ की रिपोर्टमें पृष्ठ ६८ अपेन्डिक्स ४४ए पर गोबर और मूत्रके जो भाव लगाये गये हैं, उनके अनुसार केवल गोवंशसे देशको प्रतिवर्ष ६२१ करोड़ रु० का गोबर प्राप्त होता है अर्थात् एक पशुसे ३८) रु० का गोबर। इसी रिपोर्टके आधारपर एक गायके मूत्रका वार्षिक मूल्य १४) रु० है, जिससे (Journal of veterinary science and Animal Husbandry in India 1941) के अनुसार १६०) रु० की नाइट्रोजन, ६४०) की फास्फेट तथा ५६०) रु० की पोटाश—कुल १३६०) रुपयेकी अति उपयोगी सामग्री तैयार की जा सकती है। ये अबसे २३ वर्ष पुराने मूल्य हैं, जिनके अब चौगुने हो जानेमें तो कोई संदेह है ही नहीं। जबतक इसकी व्यवस्था नहीं हो जाती तब-तक भी गोवंशके प्रत्येक पशुसे हमें प्रतिवर्ष ५२) रु० का गोबर एवं गोमूत्र मिल जाता है, चाहे वह पशु ‘उपयोगी’ हो या ‘अनुपयोगी’; जब कि सरकारी गोसदनोंमें रक्खे गये ‘अनुपयोगी पशुओं’का खर्च २५) रु० से लेकर ३०) रु० तक आता है; क्योंकि वहाँ उन्हें बहुत कम मूल्यमें जंगली चारा उपलब्ध हो जाता है। पहाड़ोंकी तराई तथा अन्य इलाकोंमें किसान लाखों गाय-बैल केवल गोबर और मूत्रके लिये ही पालते हैं।

हमारे स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्रीनेहरूजीको एक बड़ी शिकायत यह रही कि भारतमें अधिकांश गौएँ एक-एक पाव दूध देनेवाली हैं जब कि रूस आदि देशोंमें गाय एक-एक मन दूध प्रतिदिन देती है। स्व० नेहरूजीका यह आक्षेप अक्षरशः सत्य है। हम स्वयं इस तथ्यसे दुखी हैं कि जिस

१. देखिये ‘यान्त्रिक कसाईखाने’ शीर्षक मेरा लेख ‘कल्याण’

भारतकी गौएँ 'शतोदना' (सौ व्यक्तियोंको एक समय भरपेट भोजन करानेवाली) प्रसिद्ध थीं, उसी भारतकी गौएँ आज 'एकोदना' भी नहीं। भारतीय गायकी दूध देनेकी क्षमतामें निरन्तर हास हो रहा है और जैसा कि हम पूर्व ही बता आये हैं, यह हास सन् १९३५ से ६१ तक लगभग ५०% तक हुआ है। प्रश्न यह उठता है कि आखिर इस हासके कारण क्या हैं और इसके लिये दोषी कौन है ? हमने इस समस्यापर जब भी गम्भीरतासे विचार किया, सरकारको ही दोषी पाया; और इसके पीछे जो तत्व (Factor) काम कर रहा है वह है दूषित शिक्षा और उसीके परिणाम-स्वरूप दूषित खानपान, जिसने अपने प्रभावसे 'विवेक-शक्ति' को नष्ट कर दिया है। गोवंशके प्रति सरकारकी उपेक्षाका ही परिणाम है कि गायोंके चरनेके लिये देशमें आज गोचरभूमिका नितान्त अभाव हो गया है। आज ग्रामोत्तकमें गायके चरनेके लिये भूमि नहीं। पशु-खाद्यकी ७०% कमी होनेपर भी १० करोड़ रु० वार्षिककी खली विदेशोंको भेजी जा रही है। अच्छे साँड़ आज एक प्रतिशत भी उपलब्ध नहीं। दूसरे देशोंकी सरकारोंने अपने गोवंशको उन्नत एवं दुधारु बनानेके लिये काफी प्रयत्न किया है। भारतमें सरकारी सूचने गायके संरक्षण और संवर्धनपर इतना ध्यान नहीं दिया। लेकिन इस उपेक्षित अवस्थामें भी गाय आज पुनः अपनी आर्थिक उपयोगिता और दुग्ध-उत्पादनकी क्षमता प्रदर्शित कर रही है।

भारतीय गौएँ नीदरलैंडकी गायोंसे अधिक दूध दे रही हैं

केन्द्रीय गो-संवर्धन-परिषद्द्वारा देशमें प्रतिवर्ष जो दुग्ध-प्रतियोगिता आयोजित की जाती है, उसमें विगत ५, ६ वर्षोंसे हर वर्ष गायको ही अधिक दूध देनेपर पुरस्कार मिल रहा है। दुग्धोत्पादनमें भैंस अब भी गायसे पिछड़ रही है। उक्त परिषद्के अध्यक्ष श्री उ० न० डेवर भाईके शब्दोंमें गायको अगर मौका मिले तो वह 'अद्वितीय-रूपमें दुग्धोत्पादनकी क्षमता प्रदर्शित कर सकती है।' उर्लीकांचन (महाराष्ट्र) की गोशालामें 'गीर' गायको प्रतिवर्ष ४५, ४७ पौंडसे भी ऊपर दूध देनेमें पुरस्कार मिल

रहा है। गत वर्ष इस गोशालाको 'गोपालरत्न' की पदवी दी गयी थी। सन् १९६३-६४ की दुग्ध-प्रतियोगिताके लिये जो रिकार्डिंग किया गया था, उसमें उर्लीकांचनकी गायने ५३ पौंड दूध दिया। गत वर्ष पंजाबके प्रसिद्ध गोपालक श्रीहरीसिंहजीके फार्मकी साहीवाल गायको ६८.६ पौंड दूध प्रतिदिन देनेके लिये दो हजार रु० पुरस्कार दिया गया। इस गौका वर्षभरका दूध हुआ २५,०३९ पौंड। जो नीदरलैंड के ८००० पौंडवाले रिकार्डके मुकाबले तीनगुनेसे भी अधिक है। भैंसको जितनी अच्छी खुराक मिलती है, जितना अच्छा उसका पालन-पोषण होता है, उतना यदि गायका हो तो भारतकी गाय इस अवनत दशामें भी स्व० श्रीनेहरू-जीकी आकांक्षाकी पूर्ति कर सकती है।

गतवर्ष गाँधी-जयन्तीके अवसरपर बम्बईकी आरे कालोनीमें गायोंके एक नये कक्षका उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्ने देशमें दूधकी कमीका उल्लेख करते हुए कहा था, "..... पर्याप्त मात्रामें दूध न मिलनेसे अधिकांश भारतीय शारीरिक दृष्टिसे शिथिल हैं और उनकी यह असमर्थता देशके विकासमें बाधक बन रही है।"

गायको माता माननेवाले, प्रतिवर्ष गोपाष्टमीवर्ष मनाकर गायको कामधेनु, शतोदना, अवध्या और अघ्न्या कहनेवाले संसारके शिरोमणि देश इस स्वतन्त्र भारतके हम भारतीयोंपर इससे अधिक गम्भीर लाञ्छन और कौन-सा हो सकता है ? दीपावलीके महत्त्वपूर्ण अवसरपर हम देशकी जनतासे अनुरोध करते हैं कि वह जागे और राष्ट्रकी लक्ष्मी सुख और समृद्धिकी आधारशिला गौको उन्नत और विकसित बनानेमें सहयोग दे ताकि शतोदना कामधेनु निर्भय होकर स्वतन्त्ररूपसे विचरण करें और भारतमें फिरसे दूध-दहीकी नदियाँ बहती दिखायी दें। सम्पन्न लोग घरपर गौएँ पालें। शोष लोग इतना व्रत अवश्य लें कि दूध यथासम्भव केवल गायका ही प्रयोगमें लायेंगे। इससे गोपालनको प्रोत्साहन मिलेगा, गायकी रक्षा होगी। इस सम्बन्धमें किसी भी प्रकारकी सहायता अथवा जानकारी प्राप्त करनेके लिये 'सार्वदेशिक गोदृष्ट्यादि-रक्षिणी सभा (रजि०) ८ सी सिंगारनगर, लखनऊ' या 'भारत-गोसेवक समाज ३, सदर थाना रोड दिल्ली-६'से पत्र-व्यवहार करें।

वातावरणका भी विचित्र प्रभाव होता है

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

बालक श्रवणकुमार अतुलनीय मातृ-पितृभक्त आदर्श पुत्र था। जगत्के इतिहासमें उसके समान सर्वगुणसम्पन्न आशाकारी अन्य किसी युवकके उदाहरण शायद ही होंगे। वह जीवनभर अपने माता-पिताकी प्रत्येक इच्छाकी पूर्तिमें ही चरम सुख, संतोष एवं आत्मतृप्ति मानता रहा। 'मातृ-देवो भव, पितृदेवो भव'—उसका सिद्धान्त था।

जीवनकी संध्यामें उसके अंधे वृद्ध माता-पिता ने तीर्थयात्राकी इच्छा प्रकट की। उन दिनों यात्राकी आधुनिक सुविधाएँ नहीं थीं। आशाकारी श्रवण ने उन्हें काँवरमें बैठाया और पैदल ही तीर्थयात्राके लिये ले चला।

ऊँड़ वन, मैदान, मंजुल सरिताएँ, नये-नये अजनवी प्रदेश मार्गमें पड़े। पत्थर-कंकड़की पहाड़ियाँ पार कीं; श्रवण ने अनेक ऊँड़-खावड़ मार्ग पार किये। माता-पिताकी एक इच्छाकी पूर्तिके लिये श्रम, थकावट, भूख-प्यास, बेआरामीके नाना कष्ट सहे, पर वह कर्तव्यपथपर निरन्तर अग्रसर होता रहा। कर्तव्यभावना मार्गके विकट भयावह दृश्योंसे न रुकी। श्रद्धा, कर्तव्य और प्रेममें पगा, अनुरागके प्रवाहमें श्रवण उत्तरोत्तर तीर्थयात्रापर आगे बढ़ रहा था। शरीरसे थक-हारकर भी वह अपनी आत्मा और मनसे पूर्ण तृप्त और संतुष्ट था। वह माता-पिताकी सेवा कर रहा था। यही आत्मिक सुख उसे बढ़ा रहा था।

मार्गमें एक प्रदेश आया, जिसे जहाजपुर कहते हैं। इस प्रदेशमें पग रखते ही आशाकारी श्रवणके मनमें एक अजीब परिवर्तन हुआ। वह समझ न सका कि विचारोंका यह नया प्रवाह किस मार्गसे उसके मनमें प्रविष्ट कर गया।

स्वार्थ और संकुचितताके विषैले विचार चारों ओरसे आकर उसके मस्तिष्कमें उपद्रव मचाने लगे।

अब वह सोच रहा था, 'मैं इन हाड़-मांसके पिंजरेके लिये व्यर्थ ही क्यों वन-वन खाक छानता फिरोँ? ये अब हैं ही कितने दिनोंके मेहमान! ये तो थोड़े दिन बाद मरकर समाप्त हो जायेंगे, मैं इन्हें कंधेपर लादे-लादे थक-हार या हिंस्र पशुओंका भोजन बनकर क्यों प्राण गवाऊँ? तीर्थयात्रा

हो या न हो, मुझे इससे क्या लाभ? मरते हैं, तो मरें। मैं तो इन्हें यहीं छोड़कर वापस लौटता हूँ। कहाँके झगड़ेमें पड़ गया। लादे-लादे कहाँ चला आया। पाँवोंमें छाले पड़ गये।'।

इन विचारोंमें डूबकर उसने वृद्ध अशक्त, अंधे, निःसहाय, निरुपाय माता-पिताको मार्गमें आगे ले चलनेसे स्पष्ट इन्कार कर दिया।

चित्रका दूसरा पहलू देखिये—

दूसरी ओर वृद्ध माता-पिता चकित-विस्मित थे। यकायक यात्रा रुक जानेसे उनका मन संकल्प-विकल्पोसे भर गया। वे श्रवणमें यकायक परिवर्तन पाकर कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे।

वे मन-ही-मन कह रहे थे, 'अरे, यह यकायक कैसा असर है। इतने शिष्ट और सुशील आदर्श पुत्रमें ये स्वार्थ और अहंकारके विचार कैसे आये। यह आधी यात्रामें ही क्योंकर रुक गया? कहाँ तो एक पल भी हमारी सेवासे विमुख नहीं होता था और कहाँ इस अनजान वनप्रदेशमें ही हमें छोड़ देनेको तैयार हो गया है! क्या इसके संस्कारोंमें दोष आ गया है? हाय! हमारा दुर्भाग्य! यह विनाशकारी प्रभाव आखिर कहाँसे आ गया?'

श्रवणके पिता समझदार थे। उन्होंने बहुत विचारकर कहा, 'हो न हो यह इस भूमि या वातावरणका ही असर दिखायी देता है। यह जमीन पापपूर्ण विचारोंसे भरी हुई है।'।

फिर वे श्रवणसे बोले—

'श्रवण! यह ठीक है कि तुम हमें कंधोंपर लिये-लिये इतनी लंबी तीर्थयात्रा कराते-कराते थक गये हो। आगे तुम हमारा दुर्वह भार लेकर नहीं चल सकते। ठीक है, हमें कहीं-न-कहीं छोड़ दो। बस, जरा-सी एक बात मान लो। फिर आगे कुछ न कहेंगे।'।

श्रवणकुमार ने पूछा, 'कहिये, क्या चाहते हैं?'

वे बोले, 'इस प्रदेश (जहाजपुर) की सीमासे हमें बाहर निकाल दो। फिर हम स्वयं कहीं चले जायेंगे। यह फासला छोटा ही है। जहाँ तुमने हमारे लिये इतना श्रम किया है, तनिक-सा और कष्ट करो। बस, हमें इस प्रदेशकी सीमासे बाहर कर दो।'।

बेमनसे श्रवणने फिर काँवर उठा ली।

जो काँवर उसे हलकी-फुलकी लगती थी और जिसे वह मीलों बिना थकानके उठा लाया था, वही उसे अब भारी मालूम पड़ रही थी।

जिस काँवरमें रक्खे हुए वृद्ध मांसपिण्डोंका बोझ वह आह्लादित मनसे मधुर गीत गाता हुआ श्रद्धामें तन्मय हो अविरामगतिसे ले जा रहा था, वही अब उसे भारी बोझसे कंधा तोड़ती लग रही थी।

श्रवण मन-ही-मन सोच रहा था, 'थोड़ा-सा इलाका है। बस, अब पार किया। फिर इस भारसे छुटकारा मिल जायगा। यह सामनेकी पहाड़ी पार की और इस प्रदेशकी सीमासे बाहर हुए। फिर व्यर्थकी इस यात्रासे पीछा छूटेगा। लाओ, जल्दीसे इस सीमाको पार कर लो।'।

आध घंटे चलनेके उपरान्त वह प्रदेश पार हुआ। अब वह एक नये इलाकेमें प्रवेश कर चुका था।

पर यह क्या? उसके मनमें फिर परिवर्तन शुरू हुआ। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसके मनमें नया परिवर्तन क्यों हो रहा है?

सद्बुद्धि लौटी, विवेक फिर लौट आया। नये प्रदेशके वातावरणमें उसमें कर्तव्यबुद्धिका शुभ्र प्रकाश फिर जगमगाने लगा।

उस दिव्य प्रकाशमें उसे माता-पिताके प्रति की गयी अवज्ञा और भूलका ज्ञान हुआ। इस प्रदेशके प्रकाशमें उसे अपनी कुबुद्धि और कुतर्कपर भारी पछतावा होने लगा।

वह पश्चात्तापके स्वरमें बोला, 'उफ्! मैंने अपने देव-स्वरूप माता-पिताको कटुवचन कहकर कितना पाप किया है। कर्तव्यकी कितनी अवहेलना की है। मेरे वचन कितने अनुचित थे। हाय! यह कृतघ्नता, यह संकुचितता और कुबुद्धि मेरे मनमें किस प्रदेशसे आ गयी?'

श्रवणको दुखी देखकर उसके पिताने समझाया—

'श्रवण! इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। यह सब इस भूमिका बुरा प्रभाव था। इस जमीनके बुरे वातावरणमें अनेकों वर्षोंके कुसंस्कार फैले हुए हैं। इसमें बहुत दिनोंतक कपटी, बोखेबाज तथा बड़े स्वार्थियोंका निवास रहा है।

'इस प्रदेशकी विषैली वायु और दूषित वातावरणमें रहकर कोई भी दुर्भावोंसे परिपूर्ण हो सकता है। इस बुरे वातावरणमें रहकर जो क्षणभरमें तुम्हारी बुद्धि कुसंस्कारोंसे बोझिल हो उठी, इसमें तुम्हारा दोष जरा भी नहीं है। यह सब कसूर यहाँके विषैले वातावरणका ही है। तुम्हारी पितृ-मातृभक्तिमें कोई कमी नहीं है।'

यह सुनकर श्रवणको कुछ संतोष मिला। उसे मालूम हुआ कि वातावरण अच्छे आदमियोंको भी बुरा बना देता है।

विचार स्थायी होकर वातावरण बनाते हैं

आधुनिक मनोविज्ञान स्पष्ट कहता है कि हमारे विचार वायुके माध्यमसे चारों ओर फैलकर अच्छा या बुरा वातावरण बनाया करते हैं। हमारे विचार मरते नहीं। दिनों तथा वर्षोंतक आस-पासकी भूमिमें गड़ जाते हैं। वातावरणमें चक्कर लगाते रहते हैं।

हम जैसे शुभ अथवा अशुभ वातावरणमें रहते हैं, उसका गुप्त प्रभाव चुपचाप हमारे मन और शरीरपर पड़ता रहता है। मन्दिरके शुभ वातावरणमें शुभ वृत्तियाँ बिखरती हैं। मदिरालय, वेश्यालय, सिनेमा या पानकी दूकानके आगे गंदी वासनाएँ बुरी तरह भड़क उठती हैं।

गङ्गाजी, यमुनाजी, त्रिवेणी इत्यादिमें स्नान कर मन क्यों प्रसन्न होता है? आत्मा क्यों तृप्तिका अनुभव करती है? मथुरा, बदरीनाथ, केदारनाथ, हरिद्वार इत्यादि पुण्य-तीर्थोंमें क्यों हम आनन्दित रहते हैं? यहाँका वातावरण ऋषि-मुनियोंके पुण्यकायों, पवित्र विचारों और तपश्चर्या, शुभ संकल्पोंसे भरा है। आज भी वे वायुमण्डलमें मौजूद हैं।

कुछ प्रत्यक्ष अनुभव

राजस्थानके शिक्षा-मन्त्री माननीय श्रीहरिभाऊ उपाध्याय-

से वातावरणके गुप्त प्रभावके सम्बन्धमें चर्चा चली, तो उन्होंने अपने अनुभवकी कई महत्वपूर्ण बातें बतायी थीं।

वे बोले, 'वात उन दिनोंकी है, जब हमलोग दक्षिणकी तीर्थयात्रा कर रहे थे। हमने अनेक हिंदू तीर्थ-स्थानोंके दर्शन किये। अनेक भव्य मन्दिरोंमें घूमे। अनेक महात्माओंके दर्शन किये। हमारा मन उस शुभ वातावरणमें पवित्र विचारोंसे भरा रहा।

एक बार एक मन्दिरमें हमलोग पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि एक पुजारी एक यजमानसे दक्षिणाका मोल-भाव कर रहा है। पुजारी धर्मके नामपर अधिक-से-अधिक पैसा वसूल करना चाहता है, जब कि यजमान कम देना चाहता है।

धर्मके नामपर, पवित्र क्षेत्रोंमें यह मोल-भावकी वणिक्वृत्ति देखकर आधुनिक टका धर्मके प्रति मेरे मनमें ग्लानि भर गयी।

मैं सोचता रहा, 'कैसा युग आ गया कि धर्म-जैसी पवित्र भावना भी आज मोल बिकने लगी। श्रद्धा-जैसी कोई चीज नहीं रह गयी है। पैसा देकर आशीर्वाद और शुभ कामनाएँ खरीदी जाती हैं। ऐसे दिखावटी और ऊपरी धर्मके प्रति मेरे मनमें बड़ी अश्रद्धा उत्पन्न हुई।'।

वहाँसे हटकर घूमते हुए हम उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ यह कहा जाता है कि संत ज्ञानेश्वरजीने स्वयं अपने हाथोंसे वृक्ष लगाया था। हमने उस पवित्र वृक्षके दर्शन भी किये।

पर मनमें आश्चर्य हुआ !

उस स्थानपर थोड़ी देर ही विश्राम करनेपर शुभ विचारोंका दिव्य प्रवाह मेरे मनमें बहने लगा और मुझे वहाँ जिस मनःशान्तिका अनुभव हुआ, वह बड़े-बड़े मन्दिरोंमें नहीं मिली थी। मुझे अनुभव हुआ कि इसका एकमात्र कारण उस वातावरणमें गुप्तरूपसे बसनेवाला विद्युत्-प्रवाह था। वातावरणमें पवित्रता ही पवित्रताकी अनुभूति हुई।

इसी प्रकारका एक उलटा अनुभव भी हुआ था।

एक बार हम एक बड़े अमीर सेठजीके यहाँ ठहरे थे। वहाँ हमारा हर प्रकार बड़ा आदर-सत्कार हुआ। हमें स्वादिष्ट राजसी भोजन कराया गया और फिर हमें आलीशान सुसज्जित कमरेमें विश्राम कराया गया।

पलंग भी आरामदायक था। बिजलीका पंखा चल रहा था। हम थके हुए थे और यह आशा की कि पड़ते ही ऐसी गहरी निद्रा आयेगी कि कहाँ पड़े हैं, यह भी पता नहीं रहेगा।

पर पलंगपर नेत्र मूँदे पड़े रहे। सोनेका लाख प्रयत्न किया, पर आश्चर्य हुआ कि नींद ही न आयी। बार-बार प्रयत्न करनेपर भी हम न सो सके। न जाने यह नींद कहाँ गायब हो चुकी थी ! हम सारी रात करवटें बदलते रहे, पर नींद न आयी।

आखिर हमें क्या हो गया था ?

सोचते-सोचते ख्याल आया कि हो-न-हो यह दूषित और विषैले वातावरणका ही प्रभाव हो सकता है।

सुबह पूछताछ की तो हमारा अनुमान ठीक निकला। मादूम हुआ कि वे सेठजी कामुक और विलासी वृत्तिके आदमी थे। धन जब गन्दे कामोंमें लगता है, तो सड़ने लगता है। दुर्गुण भी संक्रामक होते हैं। इन महाशयका जीवन और विशेषतः यह कमरा, जिसमें हमें ठहराया गया था, आमोद-प्रमोद, भोगविलास, नृत्यगानके गंदे कार्योंसे, गंदे कामुक विचारोंसे भरा हुआ था। उस धनीके दुश्चरित्र आदमी तथा कुसंगतिके विषैले विचार समस्त वातावरणमें खटमल, जूँ, मच्छर और मक्खियोंकी तरह भरे हुए थे।

ये विचार, गंदी वासनाएँ, कुत्सित भावनाएँ वहाँके वायुमण्डलमें आजतक चिपकी हुई थीं। उन्हींसे उस कमरेका वातावरण इतने दिनों बाद भी गंदा था। वायुमण्डलमें व्याप्त आँखोंसे न दीखनेवाले कुसंस्कारोंने हमें रातभर परेशान कर रखा था। हमारा मन भी कामुक और अशान्त बना रहा था।

सम्भव है आपका भी कोई इस प्रकारका अनुभव हो ? वातावरणके गुप्त असरके प्रसंग हमारे जीवनमें आते रहते हैं। इन प्रसंगोंसे मनुष्यके दुर्गुणोंकी संक्रामकता प्रकट होती है।

दुराचार आसपासके वातावरणमें गंदगी उत्पन्न करता है। यह वातावरण एक-दो दिन नहीं, सप्ताह और वर्षोंतक बना रहता है। दुर्गुण आसानीसे अपना स्थान नहीं छोड़ते।

कण-कणमें बस जाते हैं। व्यभिचारके अङ्गोंमें अच्छा व्यक्ति भी वासनाओंसे भर जाता है।

दूसरी ओर सज्जनता, प्रेम, भक्ति, सदाचार, धर्मभावना, शान्तिभावना, यज्ञादि पवित्र कार्य, पूजन, भजन, कीर्तन इत्यादि शुभ धार्मिक कार्योंसे शुभ सात्त्विक वातावरण पैदा होता है।

हमारे घर, परिवार, मुहल्ला या शहरके वातावरणका अच्छा या बुरा होना स्वयं हमारे विचारों और कार्योंके ऊपर निर्भर है।

उत्तम वातावरण बनाइये

याद रखिये, आपके मनमें जैसे छिपे हुए विचार होंगे, जैसा चरित्र होगा, वैसी ही विचारोंकी किरणें आपके आस-पास गुप्तरूपसे वायुमण्डलमें फैलेंगी। विचार छिपते नहीं, प्रकट होकर रहते हैं। विचार संक्रामक हैं।

सद्गुण और दुर्गुण संक्रामक हैं अर्थात् छूतसे फैलते हैं। जैसे काला रंग जल्दी और सफेद देरमें असर करता है, वैसे ही साधारणतः दुर्गुणोंका प्रसार जल्दी और सद्गुणोंका प्रसार देरमें होता है। आपके घरवाले जैसे विचारोंका वायुमण्डल बनाते हैं, बच्चे भी वैसे ही संस्कार एकत्रित करते जाते हैं।

आपके द्वारा बोले हुए वचन ध्वनिकी किरणें छोड़ते हैं। अतः शुभ वचन ही उच्चारण करें। बच्चोंके नाम आप दिनमें ५०-६० बार पुकारते हैं। इसलिये ऐसे नाम रखिये जिनमें 'राम' अथवा 'कृष्ण' या 'ॐ' इत्यादिका प्रयोग हो। किसी देवी-देवताका या महापुरुषका पवित्र चरित्र उनसे जुड़ा हुआ हो। बार-बार उसे पुकारनेसे शुभ संस्कार बनते हैं।

आपकी दीवारोंपर लगे हुए चित्र देवी-देवताओं, रामायण या महाभारत, गीता या धार्मिक प्रसंगोंके होने चाहिये। पवित्र श्लोक, दोहे, शुभ वाक्य, उपयोगी सूक्त, गायत्री या और ऐसे पवित्र वचन रहें, जिनपर बार-बार आपकी दृष्टि पड़ती रहे। ये चित्र और सिद्धान्त-वाक्य, उत्तमोत्तम पुस्तकें, धार्मिक पत्र-पत्रिकाएँ, धार्मिक कार्य—पवित्र वातावरण बनाते हैं। घरमें एक छोटा-सा पूजाघर

या किसी खिड़कीमें भगवान्‌का निवासस्थान अवश्य रखिये और दिनका प्रारम्भ भजन-पूजन, आरती, शुभ दर्शनसे किया कीजिये।

कुछ समय उत्तम धर्मग्रन्थोंके स्वाध्यायके लिये अवश्य रखिये। साधु-पुरुषोंका सङ्ग, मन्दिरका निवास, श्रीगङ्गाजी, यमुना, त्रिवेणी आदिका स्नान—पवित्र चिन्तन पैदा करते हैं।

बच्चोंसे उत्तमोत्तम भजन उच्चारण कराइये। स्वयं भी उनके साथ गाया कीजिये। भूलकर भी बच्चोंके सामने गाली मत दीजिये या कोई गंदी हरकत न कीजिये। आज-कल सिनेमामें अश्लील कामोत्तेजक गीतोंकी भरमार है। सारे दिन अश्लील गीत गूँजते रहते हैं। अपने बच्चोंको इनसे बचाइये। सिनेमा मत देखने दीजिये और किसी अभिनेत्री-का चित्र घरमें, कैलेण्डर या और किसी भी रूपमें मत रखिये। आज सिनेमासम्बन्धी गंदी पत्रिकाओंकी भरमार है। ऐसी कोई पत्रिका या पुस्तक घरमें मत रहने दीजिये।

पान, बीड़ी तथा अश्लीलताके विचार, कामुकता बढ़ाने-वाले पदार्थ, ऐश-विलासकी वस्तुएँ, मानसिक ऐय्याशीकी चीजें इकट्ठी मत कीजिये। वासनाएँ बहुत बलवान् हैं। ये कभी-कभी तो समझदार और विद्वान्‌को भी अपनी ओर बलात् खींच लेती हैं—

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।

(मनु० २।१५)

अर्थात् सावधान, इन्द्रियाँ अति शक्तिमान् हैं। ये विद्वान्‌को भी नाच नचाती हैं। इसलिये इन्द्रियोंके ऊपर कठोर नियन्त्रण रखिये।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

(गीता २।६०)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—“अर्जुन! प्रमथनस्वभाव-वाली इन्द्रियाँ यत्नशील बुद्धिमान् पुरुषके मनको भी बलपूर्वक हर लेती हैं।”

सदा सात्त्विक वातावरण ही बनाइये। शुभ सोचिये, शुभ दर्शन कीजिये और शुभ वचन ही उच्चारण कीजिये।

हमारे जीवनका मानदण्ड—सदाचार

(लेखक—स्वामीजी श्रीकेशवपुरीजी)

सदाचार मानव-जीवनमें उस कीर्तिस्तम्भके समान है जो मनुष्यको उसके जीवनकालमें तथा मृत्युके पश्चात् भी उसके यशरूपी शरीरको अमर बनाये रखता है। मार्कण्डेयपुराणके ३४ वें अध्यायमें सदाचारका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। उनमेंसे कुछ प्रमुख बातोंका विवेचन यहाँ किया जाता है।

महासती महारानी मदाहसाने अपने पुत्र अलर्कको सर्वप्रथम राजधर्म (राजनीति-)का उपदेश दिया। उसके अनन्तर वर्णाश्रमधर्म तथा नित्य-नैमित्तिक और काम्यकर्मोंका उपदेश दिया। तत्पश्चात् राजकुमार अलर्कने सदाचार-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करनेकी अभिलाषा प्रकट की। मातासे उसने नम्रतापूर्वक आग्रह किया और कहा कि जिस आचरणसे मनुष्यको इस लोकमें तथा परलोकमें भी (मनुष्य-शरीरोंसे अतिरिक्त शरीरोंमें भी) सुखकी प्राप्ति होती है, उसका मुझे उपदेश दो। तब माताने कहना आरम्भ किया—

यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये।

भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते ॥

सदाचारका उल्लङ्घन करनेवाले व्यक्तिके लिये यज्ञ, दान और तप कल्याणकारक नहीं होते (ये क्रियाएँ हृदयकी शुद्धि करती हुई मनुष्यको जन्म-मरणके दुःखसे छुड़ाकर मुक्ति—परमानन्दकी प्राप्ति कराती हैं। सदाचारके बिना हृदयकी शुद्धि नहीं हो सकती। हृदयकी शुद्धि हुए बिना मनुष्य कल्याणको प्राप्त नहीं कर सकता)।

सार्वजनिक स्थानोंकी स्वच्छता एवं जनसाधारणके स्वास्थ्यका ध्यान रखते हुए कहा गया है—

ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि।

विण्मूत्रं नानुतिष्ठेत् न कृष्टे न च गोव्रजे ॥

गाँव, निवासस्थान, तीर्थोंके मार्ग (नदी, कुआँ, सरोवर तथा देवालयके मार्ग) एवं अन्य मार्गोंपर और जोते हुए खेतोंमें तथा गोशालामें मलमूत्र-त्याग नहीं करना चाहिये। जलकी स्वच्छता तथा शुद्धतापर जोर देते हुए आगे कहा गया है कि उसमें मल-मूत्र त्याग करना तथा मैथुन करना निषिद्ध है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि मल-मूत्र, केश तथा राख आदि भी जलमें नहीं फेंकने चाहिये। (जल पवित्र-तम वस्तु है और प्राणिमात्रके जीवनका आधार है, उसे गंदा करना अक्षम्य अपराध है।)

मार्गोंकी तथा भूमिकी स्वच्छतापर विशेष बल देते हुए कहा गया है कि कूड़ा-करकट फेंकनेसे मार्ग गंदे होते हैं और उससे रोगोत्पादक कीटाणु उत्पन्न होते हैं तथा आवागमनमें कष्ट होता है, इसलिये निर्धारित स्थान-पर ही कूड़ा फेंकना चाहिये। देखिये यह श्लोक—

तुषाङ्गारास्थिशीर्णानि रज्जु वस्त्रादिकानि च।

नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि चैवं तथा भुवि ॥

विचारवान् व्यक्तिको चाहिये कि मार्गमें तथा भूमिपर (जहाँ-तहाँ) कूड़ा-करकट, अङ्गार (कोयला), हड्डियोंके टुकड़े, रस्सी एवं कपड़े और चिथड़े आदि न फेंके।

विद्या, वय तथा सम्मान आदिमें अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तियोंका अभिवादन (प्रणाम आदि) करनेसे आयु, विद्या, यश और बलकी वृद्धि होती है। यह मनुस्मृति आदि अन्य ग्रन्थोंमें कहा गया है। इसी आशयसे निम्नाङ्कित वचन कहे गये हैं—

गुरुणामासनं देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम्।

अनुकूलं तथालापमभिवादनपूर्वकम् ॥

तथानुगमनं कुर्यात् प्रतिकूलं न संजपेत् ॥

गुरुजनों (श्रेष्ठ व्यक्तियों-) के आनेपर खड़े होकर

उनका सत्कार करना चाहिये और उन्हें बैठनेके लिये आसन देना चाहिये । अभिवादन करके प्रियभाषण करना चाहिये । उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये और विपरीत भाषण नहीं करना चाहिये ।

गुरुके दोषोंको किसीसे नहीं कहना चाहिये और यदि वे क्रुद्ध हों तो उन्हें प्रसन्न करना चाहिये । साथ ही गुरुकी निन्दा यदि कोई करता हो तो उसे भी नहीं सुनना चाहिये (गुरुकी निन्दा करने या सुननेसे ज्ञानार्जनमें बाधा उपस्थित होगी अतः उसका त्याग करना चाहिये) । जैसा कि कहा गया है—

दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात् क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत् ।

परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् ॥

सड़कों और गलियोंमें भीड़ जुटाकर मार्ग नहीं रोकना चाहिये । इतना ही नहीं, आगेके श्लोकमें गिनाये गये व्यक्तियोंके लिये तो तत्काल मार्ग खाली कर देना चाहिये । देखिये यह श्लोक—

पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखानुरस्य च ।

विद्याधिकस्य गुर्विण्या भारतरत्नस्य यवीयसः ॥

तपस्वी ब्राह्मण यदि सामनेसे आता हो, तो उसके लिये मार्ग खाली कर देना चाहिये । इसी प्रकार राजा, दुःखसे व्याकुल व्यक्ति, विशिष्ट विद्वान्, गर्भवती स्त्री तथा बोझसे पीड़ित दुर्बल मनुष्य—इनके लिये मार्ग खाली कर देना चाहिये । साथ ही गूंगे, अंधे, बहरे तथा पागलोंको भी मार्ग देनेको कहा गया है (इन लोगोंके मार्गको अवरुद्ध करनेसे इन्हें कष्ट होगा और हानि भी हो सकती है । अतः मार्ग अवश्य ही रिक्त कर देना चाहिये; यह तार्प्य है) ।

अहिंसाके पक्षपातियोंको एवं कल्याणकी इच्छा रखनेवालोंको शारीरिक हिंसाके साथ ही वाचिक तथा मानसिक हिंसाका भी त्याग करना आवश्यक है । अन्यथा, मनकी शुद्धि नहीं हो सकती । मानसिक शुद्धिके अभावमें उत्तम गुणोंकी प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं । निम्नाङ्कित पद्यके द्वारा यही बात लक्षित होती है—

मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्जयेत् ।

दम्भाभिमानतीक्ष्णानि न कुर्वीत विचक्षणः ॥

बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि हृदयको चोट पहुँचानेवाले शब्दोंका प्रयोग न करे, गाली न दे, किसीकी चुगली न करे तथा कपट और अभिमानका त्याग करे ।

पुराने लोगोंने कहा है—‘लड़ाईकी जड़ हँसी और रोगोंकी जड़ खौसी’ इसलिये हँसी-दिल्लीगी करनेमें भी बहुत सावधान रहना चाहिये । कभी-कभी थोड़ी-सी असावधानी भी घोर अनर्थ कर देती है । किसीके हृदयको दुखाना मानवताके विरुद्ध है । आगेका पद्य इसी ओर संकेत कर रहा है—

मूर्खोन्मत्तव्यसनितो विरूपान् मायिनस्तथा ।

न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्च नोपहासैर्विदूषयेत् ॥

मूर्ख, पागल, व्यसनी (गँजेड़ी, भँगेड़ी, शराबी आदि), कुरूप व्यक्ति, जादूगर, न्यूनाङ्ग (छले-लँगड़े, काने आदि) और अधिकाङ्गोंका उपहास कर उन्हें तिरस्कृत नहीं करना चाहिये ।

जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सफलता प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करना बहुत ही आवश्यक बताया गया है । इसके द्वारा मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है । इसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि परस्त्री-संसर्गसे मनुष्य अपनेको बचाये रखे । इससे बढ़कर आयुको क्षीण करनेवाली तथा सत्कर्मोंकी विनाशक संसारमें कोई भी दुष्क्रिया नहीं है । कुछ अन्य श्लोकोंद्वारा सामान्य शिष्टाचारका वर्णन किया गया है, जिसका सारांश इस प्रकार है—

दाँतोंको परस्पर घिसना एवं कटकटाना और अपने देहको ताड़न करना अशिष्टता है । वेश भूषाके सम्बन्धमें बताया गया है कि सम्य वेश धारण करे । अमङ्गल-सूचक (उलटा-सीधा अथवा विकृत) वेश न बनावे तथा अप्रिय (कटु) वाणीका प्रयोग कभी नहीं करे ।

इस प्रकार भारतीय तत्त्वदर्शी महर्षियोंने जीवनके

प्रत्येक पक्षपर सूक्ष्म विचार कर एवं परीक्षण करके नियम बनाये हैं। आवश्यकता है जीवनकी प्रयोगशालामें उनका परीक्षण कर उनसे लाभ उठानेकी। सदाचारके सम्बन्धमें कुछ प्रमुख बातोंकी चर्चा ऊपर की गयी है। अधिक विस्तारमें न जाकर सदाचारकी परिभाषा यदि हम दो शब्दोंमें जानना चाहें तो वह यही होगी—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

जो आचरण हमें अपने प्रति प्रतिकूल प्रतीत होता हो, वैसा आचरण या व्यवहार हमें दूसरोंके प्रति भी कदापि नहीं करना चाहिये। यही मानव-जीवनके व्यवहारका मानदण्ड है—यही आदर्श है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

भारतीय राजनीति तबकी और आजकी

(लेखक—श्रीरामनिरीक्षणसिंहजी, एम्० ए०, काव्यतीर्थ)

जबसे पश्चिमके देशोंमें सभ्यताका विकास हुआ है, तबसे राजनीतिकी चर्चा विशेषरूपसे आधुनिक युगमें होने लगी है। राजतन्त्र और प्रजातन्त्रके भेदसे आधुनिक समयमें राजनीतिके दो विशेष रूप लोकमें प्रचलित हुए हैं, कहीं-कहीं इन दोनोंका मिश्रित रूप भी प्रचलित है, जैसे कि इंग्लैंडमें। वहाँ वंशक्रमागत राजा भी हुआ करते हैं और चुने हुए सदस्योंके द्वारा निर्मित पार्लियामेंट भी शासनके क्रममें समय-समयपर उलट-फेर किया करता है। पार्लियामेंटके स्वरूपके अनुसार ही राजा शासन-कार्यमें अपनी स्वीकृति दिया करते हैं। इस प्रकार वहाँ राजतन्त्र तथा प्रजातन्त्रका सम्मिश्रण वर्तमान जा रहा है।

भारतमें प्राचीन कालसे राजतन्त्र ही मुख्य शासन-पद्धति चला आ रहा था। परंतु स्वाधीनता-प्राप्तिके बादसे जो शासन-पद्धति निर्मित विधानके आधारपर चलायी गयी है वह अधिकांशमें यूरोप एवं अमेरिकाकी शासन-पद्धतियोंकी अनुकृति है। इस शासन-पद्धतिको अभी तक देशने सम्पूर्णरूपसे अपनाया नहीं है। यद्यपि उसका ढाँचा मात्र तैयार हुआ है और जितनी भी त्रुटियाँ इस शासन-पद्धतिमें सम्भव हैं वे सारी त्रुटियाँ काम कर रही हैं एवं निकट-भविष्यमें वे त्रुटियाँ हट जायँगी, ऐसी आशा भी नहीं की जा सकती।

प्राचीन भारतमें प्रजातन्त्र या लोकतन्त्र नामकी कोई वस्तु राजनीतिमें स्पष्टरूपसे विद्यमान नहीं थी। राजनीति (राजाके द्वारा शासनमें वर्तमान जानेवाली नीति या नियम) या राजधर्म राजाके जानने और बर्तनकी वस्तु थी। उसके लिये प्रजाको कोई चिन्ता नहीं करनी थी। राजा कभी भी प्रजाके अहितका काम करेगा, इसकी आशंका कभी

नहीं होती थी। पुराणोंमें एकमात्र उदाहरण मिलता है राजा वेणका, जिसके दुराचारसे ऊबकर प्रजाने उसे गद्दीपरसे च्युत करके पृथुको अभिषिक्त किया था।

प्रजाके हित-साधनके लिये, प्रजाके मनोरञ्जनके लिये राजा सब कुछ करनेको प्रस्तुत रहता था। इसके सैकड़ों उदाहरण प्राचीन साहित्यमें भरे पड़े हैं—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताम्यो बलिमग्रहीत्।

सहस्रगुणमुत्सृष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥

(कालिदास रघुवंश)

अर्थात् प्रजाकी भलाईके लिये ही राजा (दिलीप) उनसे कर वसूलते थे, जैसे कि सूर्य पृथ्वीसे जितना रस लेते हैं, उससे हजार गुना वरस देते हैं।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

(रघुवंश)

‘प्रजाके पढ़ने-लिखनेका प्रबन्ध तथा भरण-पोषण करनेके कारण वह राजा दिलीप प्रजाके वास्तविक पिता थे, उनके अपने पिता तो केवल जन्म देनेवाले थे।’

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

(उत्तररामचरित)

‘स्नेह, दया, सुख तथा जानकीको भी प्रजाके मनोरञ्जनके लिये त्याग करनेमें मुझे कोई कष्ट नहीं होगा।’ गर्भवती सीताको एक प्रजाके अपवादके कारण वन भेजनेके पूर्वकी यह रामकी उक्ति है। ऐसे राजाके विषयमें प्रजाको उसकी नीयतके सम्बन्धमें कभी कोई संदेह कैसे हो सकता है?

इसलिये प्राचीन भारतमें राजनीतिके समक्ष प्रजानीति

(लोकनीति) नामकी कोई वस्तु नहीं थी और प्रजा कितनी सुखी और सम्पन्न थी, इनका प्रमाण रामराज्यकी अद्यावधि सराहनीय लोकोक्ति है । गान्धीजीके जीवनकालमें भारतीय संविधानकी रचना नहीं हुई थी । परंतु इतना स्पष्ट था कि गान्धीजी गणतन्त्र शासनप्रणालीके समर्थक होते हुए भी रामराज्यको सर्वश्रेष्ठ शासनप्रणाली समझते थे । वे कागजपर लिखे हुए संविधानको उतना महत्त्व नहीं देकर शासकोंके आचार तथा लोकसेवा-वृत्तिको शासनका मुख्य आधार समझते थे ।

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट है कि जब प्रजानीति कोई वस्तु नहीं थी, तो प्रजाको शासन-कार्यसे कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं था । राजाके मन्त्री वशिष्ठ, शतानन्द और विदुर तथा चाणक्यके समान नीति-निपुण तथा तपस्वी महापुरुष हुआ करते थे । न इन्हें कोई निर्धारित वेतन मिलता था और न भत्ता । राजा मन्त्रीसे डरते थे, मन्त्री राजासे नहीं डरते थे । मुनि वशिष्ठ आश्रमवासी थे और समय-समयपर राजमहलमें आकर सलाह दिया करते थे । चाणक्यका झोपड़ा चन्द्रगुप्तके राज्यप्रासादसे बाहर उसीके संनिकटमें था, जिनमें कुछ आवश्यक सामान-के अतिरिक्त इंगुदीके बीज और सिल-लोढ़े उसे फोड़नेके लिये रक्खे हुए थे । इंगुदी-बीजको ही संसार-प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ अपने सिरपर मलते थे । सारा गुप्तसाम्राज्य उनके इशारेपर चलता था । वेतनभोगी लोग राज्य-कार्यमें उचित बात कहनेमें डरते हैं । उनका मुख्य ध्येय रहता है प्रधान शासकको प्रसन्न रखना । ऐसे मन्त्रियोंके द्वारा कैसा शासन हो सकता है, यह आज हमारी आँखोंके समक्ष प्रत्यक्ष है ।

प्राचीन भारतमें राजनीतिसे कोई आदमी अपनी जीविका नहीं चला सकता था । जब बड़े-बड़े मन्त्री लोग तपस्वीका जीवन व्यतीत करते थे, तब साधारण योग्यतामें लोग राजनीतिमें भाग लेकर क्या उपार्जन कर सकते थे ।

आजकी नकली (Imitated) राजनीति भारतवर्षपर एक बला-सी आकर लड़ गयी है, जो देशको सत्यानाशमें मिला रही है । हम यह नहीं कहते हैं यह पद्धति बिल्कुल निकम्मी है, आखिर अन्य जगहोंमें तो इस पद्धतिसे शासन चल ही रहा है । पर यहाँ तो अजीब वातावरण तैयार हो गया है । ऊपरसे नीचेतक लाखों

ऐसे आदमी शासन-कार्यमें घुस गये हैं—सदस्य, मन्त्री और अफसरोंके रूपमें, जिन्हें न कोई विशेष शासनिक योग्यता है और न त्याग-तपस्या है । उन्हें हाथ साफ करनेका खुला अवसर मिल गया है और सब विभागोंमें लूट-खसोट मची हुई है । हर विभागमें अनावश्यक लोगोंको घुसेड़कर शासनव्ययको बेहिसाब बढ़ा दिया गया है । झूठी डाइरियोंको भर-भरकर भत्तेकी रकमें वसूल की जा रही हैं । दूसरी तरफ जनतापर नये-नये करोंका भयानक बोझ लादा जा रहा है । मालूम होता है कि इने-गिने लोगोंको छोड़कर देशहितकी चिन्ता इस देशसे विदा हो गयी है । सुदूर भूतकालकी बात छोड़िये । जिस महात्मा गान्धीको देशवासी लोग नवीन भारतका निर्माता कहते हैं—उनके जीवनके आदर्शको, लोकसेवाके व्रतको लोग सर्वथा भुला रहे हैं । उनकी लंगोटीके स्थानमें मन्त्रियों और अफसरोंकी पोशाकोंको देखकर कौन कह सकता कि गान्धीजीने विदेशियोंके हाथोंसे राज्य छीनकर इन्हींके हाथोंमें सौंपा था । ये तो गरीब भारतीयोंके प्रतिनिधि और रक्षक कदापि नहीं समझे जा सकते ।

राजनीतिकी बात हटाइये । साधारण नीतिपर ही दृष्टि डालिये । चाणक्य, कामन्दक और शुक्रनीति आदि नीति-ग्रन्थों तथा रामायण-महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थोंमें मनुष्य-के दैनिक जीवनके जो नियम उदाहरणसहित वर्णित हैं, जिनके सहारे भारतीय लोग हजारों वर्षोंसे धर्ममय जीवन बिताते आये हैं, आजके भारतीय शासनमें अथच सामाजिक जीवनमें उन नियमोंकी सर्वथा अवहेलना की जा रही है । चार्वाकके दार्शनिक सिद्धान्त व्यापकरूपसे बर्ते जा रहे हैं—

यावज्जीवं सुखं जीवेद्विष्णं कृत्वा घृतं पिवेत् ।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

परलोक और पुनर्जन्मको नहीं माननेवाले चार्वाकका यह सिद्धान्त है । येन-केन प्रकारेण चोरी, ठगी, घूसखोरी आदि कुकर्मोंसे द्रव्योपार्जन करके जीवनमें मौज उड़ानेका सिलसिला आज भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें और सारे समाजमें चल रहा है । इसीको लोग भ्रष्टाचार कहते हैं । स्वतन्त्रता-प्राप्तिके दिनोंसे इस विषयमें बड़ी वृद्धि हुई है, मौजूदा शासनविधान देशकी वर्तमान स्थितिमें कथमपि हितकर नहीं है । सवयस्क (बालिग) मताधिकारका पौने सोलह आने दुरुपयोग हो रहा है । नवीन जनतन्त्र शासन-पद्धतिके वास्तविक रूपको यहाँकी अपढ़ जनताने

अभीतक नहीं समझा है। मताधिकारका अधिकतर उपयोग जातीयताके आधारपर हो रहा है। अवाञ्छनीय लोग ही अधिकतर मतसंग्रहमें सफल हो रहे हैं, जिसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हो रहा है कि ऐसे सदस्य एवं मन्त्री होनेपर वे कुकर्मके द्वारा धनसंग्रहमें तत्पर हो जाते हैं और जनताके सामने इस विधानकी खामियोंका दिग्दर्शन कराने लगते हैं। एक तो वर्तमान विधानने ही शासनको अत्यधिक खर्चीला बना रखा है, उसपर भी भाँतिभाँतिकी तिकड़मवाजीसे मन्त्री और सदस्य लोग धन बटोरनेमें लगे रहते हैं। P. W. D. (जनकार्य-विभाग) उनके लिये कामधेनु गाय है। प्रत्येक समझदार भारतीय समझ रहा है कि शासनव्यय हर दिशामें आवश्यकतासे कईगुने अधिक है। इस गरीब देशका शासन इससे कईगुने कम खर्चमें चलाया जा सकता है। आज तो चारों ओर महाभोजका दृश्य उपस्थित है। पानीकी तरह रुपया बहाया जा रहा है, जिसमें भ्रष्टाचारियोंकी पाँचों अँगुलियाँ धीमें पड़ रही हैं। मेरे तुच्छ विचारमें अपव्यय तथा भ्रष्टाचारको रोकनेके लिये एवं देशको स्वायत्तान्तके विषयमें स्वावलम्बी बनानेके लिये शासनविधानमें कम-से-कम दस वर्षोंके लिये निम्नलिखित सुधार किये जाने चाहिये और गान्धीजीके द्वारा दर्शाये गये जनसेवकोंके वेतनक्रममें पाँच सौ रुपयेको परमावधि समझा जाना चाहिये। उसी प्रकार विधायिकाके तथा लोकसभाके सदस्यों और मन्त्रियोंके वेतन तथा भत्तेमें न्यूनातिन्यून क्रमको जारी करना चाहिये। आज जो एक-एक सदस्यके चुनाव-संग्राममें दस हजारसे लेकर एक लाखतक रुपये खर्च किये जाते हैं और मुख्य मन्त्रियोंके चुनावमें कई लाख रुपये सदस्योंको किसी भी रूपमें दिये जाते हैं, उन्हीकी तहमें यह भ्रष्टाचारका बीज छिपा हुआ है। विधायिका और लोकसभाकी सदस्यता तथा मन्त्रित्वके पदको त्याग और लोकसेवाका पद समझा जाय। तभी भ्रष्टाचारका निरोध होगा। आजकी क्या स्थिति है। बड़े शहरोंमें बहुत सारे मन्त्रियोंकी लाखों रुपयेके व्ययसे इमारतें बन गयी हैं, जिनसे उन्हें हजारों रुपये मासिक किरायेके आते हैं। सरदार प्रतापसिंह कैरो तो गफलतमें पकड़ा गये। कुछ न्यूनाधिकरूपमें उनके समकक्ष बहुत-से मन्त्री हो चुके हैं और अभी भी जाँच होनेपर पाये जायँगे।

सुधारके सुझाव—

१—बालिग मताधिकारके स्थानमें कम-से-कम प्रवेशिका परीक्षोत्तीर्ण पुरुष तथा माध्यमिक परीक्षोत्तीर्ण स्त्रियाँ मतदानके अधिकारी हों।

२—अधिकतर चुनाव अप्रत्यक्ष ढंगसे हों।

३—सदस्योंकी संख्या आधी कर दी जाय। सदस्योंकी संख्या पर मन्त्रियोंकी संख्या न्यूनातिन्यूनरूपमें निर्धारित कर दी जाय। साधारणतया पचास सदस्योंपर एक मन्त्री।

४—स्नातक (Graduate) से कम योग्यताके लोग विधायिका तथा लोकसभाके सदस्य नहीं बनाये जायँ, हरिजनों एवं परिगणित जातियोंको छोड़कर। उनमें भी प्रवेशिकाका नियम रहे।

५—प्रान्तों तथा केन्द्रमें मन्त्रियों तथा सदस्योंका वेतन-क्रम और भत्ता आजकी अपेक्षा आधा कर दिया जाय। सरकारी हुक्कामोंके वेतनमें भी इसी प्रकार कटौती होनी चाहिये। ढाई सौसे कम वेतनवालोंको अछूता छोड़ दिया जाय। इस विषयमें पदका दायित्व तथा योग्यताके आधारपर काम किया जाय।

प्रायः दस वर्षोंतक सरकारी इमारतोंका निर्माणकार्य रोक दिया जाय। साधारण तात्कालिक मकानोंसे काम लिया जाय।

६—इस अभ्यन्तरमें कृषि-कार्यमें देशके जल-वायुके अनुकूल प्रगति लानेका भरपूर प्रयत्न हो। खादोंकी कीमत घटा दी जाय। समयपर अच्छे बीज वितरण किये जायँ और उ३ विभागमें न केवल किताबी विद्यावाले लोग वरं भारतीय कृषि-मर्मको जाननेवाले किसान लोग ही अधिकतर नियुक्त किये जायँ।

यें बातें इस निबन्धमें कुछ अप्रासंगिक होनेपर भी समाविष्ट इसलिये की गयी हैं कि अभी देशमें सुधार और विकासके काम अधिकांश अन्धकारमें टटोल-टटोलकर चलनेके समान अनुसंधानके रूपमें ही चल रहे हैं। हो सकता है कि इनमेंसे कुछ बातें देशके कर्णधारोंको उपयोगी जँचें और राजनीतिके दायरेमें धर्मनीतिको आश्रय देकर कुछ स्थायी और ठोस काम किये जा सकें।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा

[संक्षिप्त इतिहास और पुनरुद्धारकी योजना]

(प्र० — पं० श्रीदेवधरजी शर्मा, मन्त्री — श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-संघ)

ऐसा कौन भारतवासी होगा, जिसके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णका पवित्र नाम प्रतिष्ठित न हो। श्रीकृष्णका नाम हमारे सांस्कृतिक विकासका प्रतीक और भारतीय जीवन-दर्शनका सबसे ऊँचा प्रकाशस्तम्भ है। उनका अवतार ही सज्जनोंके परित्राण, धर्मकी स्थापना तथा अधर्मका नाश करनेके लिये हुआ था। उनके व्यापक लीला-क्षेत्रके अन्तर्गत हमारे जीवनके सभी पक्ष—आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक—आ जाते हैं। यही कारण है कि उन्हें ईश्वरका पूर्णावतार माना जाता है। कष्टोंसे पीड़ित मानवको श्रीकृष्णने भगवद्गीताद्वारा संसारसे अनासक्त रहनेका दिव्य संदेश दिया था। श्रीकृष्णका जन्म-वृत्त कोटि-कोटि मानवोंके हृदयोंमें संजोया हुआ है। ब्रजमें लोक-ललाम लीलाएँ करनेवाले नन्दनन्दन, गोपकुमारोंके स्नेही सखा प्यारे कन्हैया और अर्जुनके सतर्क सारथि जनार्दन आज भी जन-मानसमें वैसे ही विद्यमान हैं—भारतीय विचारधारा और जीवनमें पूरी तरह व्याप्त हैं।

भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव हुआ ब्रजमण्डलकी मथुरापुरीमें, और सम्भवतः इसी कारण वह भारतकी प्रसिद्ध सात भोक्षदायिनी पुरियोंमें मानी गयी—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता भोक्षदायिकाः ॥

परंतु मथुरापुरीका इतिहास भगवान् श्रीकृष्णके प्राकट्य-कालसे भी पुराना है। पौराणिक कथाके अनुसार भगवान् श्रीरामके छोटे भाई शत्रुघ्नजीने 'लवण' दैत्यका वध करके यमुना-तटपर 'मथुरा' नामक एक पुरीकी स्थापना की थी—

हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम्।

शत्रुघ्नो मथुरां नाम पुरीं तत्र चकार वै ॥

(विष्णुपुराण ६।१२।४)

वह 'मथुरा' ही आगे चलकर मथुराके नामसे प्रसिद्ध हुई और यहीं क्रूरकर्मी राजा कंसके कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ।

कंसका वह कारागार 'कटरा-केशवदेव' कहलाता है। विद्वानोंके कथनानुसार आजका 'कटरा-केशवदेव' ही प्राचीन मथुराका केन्द्र-स्थान है। विदेशी विद्वान् श्रीकनिंघम तथा श्रीग्राउसने मथुराके प्राचीन इतिहासका अनुसंधान और अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि 'कटरा केशवदेव' तथा उसके आस-पास दिखायी पड़नेवाले खण्डहरोंपर ही पुरानी मथुरा बसी हुई थी।

पुरातत्त्व-विभागकी खोजोंसे, 'कटरा केशवदेव'में प्राप्त हुए अवशेषोंसे तथा विदेशी यात्रियोंके वर्णनोंसे भी इस बातका पता चलता है कि इस स्थानपर अनेकानेक विशाल एवं भव्य मन्दिरोंका निर्माण समय-समयपर हुआ था। परंतु उनमेंसे कुछ तो कालके प्रभावसे नष्ट हो गये और कुछको, बड़े परितापके साथ लिखना पड़ता है कि विधर्मी आक्रमण-कारियोंने नष्ट कर दिया। एक भी मन्दिर सुरक्षित नहीं बच सका।

आज देश-विदेशके यात्री जब जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णके पावन जन्मस्थानका दर्शन करने जाते हैं, तब उन्हें उसकी दुर्दशा देखकर बड़ी व्यथा और निराशा होती है। 'कटरा-केशवदेव'की विशाल भूमिके बीचमें ऊँची कुर्सीपर एक ईदगाह बनी हुई है और कुर्सीका शेष भाग, जो ईदगाहके पीछे है, 'कृष्ण चबूतरेके' नामसे प्रसिद्ध है। यही वह पावन स्थल है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने अवतार-ग्रहण किया था। यह ईदगाह भगवान् केशवदेवके एक प्राचीन प्रसिद्ध मन्दिरके भग्नावशेषपर खड़ी है।

पौराणिक कथा और जनश्रुतिके अनुसार इस स्थानपर सबसे प्रथम भगवान् श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभने अपने कुलदेवताकी स्मृतिमें एक मन्दिर बनवाया था। पुरातत्त्वकी दृष्टिसे सबसे पुराना शिला-लेख महाक्षत्रप शोडासके समय (ई० पूर्व ८०-५७) का मिला है। यह ब्राह्मी लिपिमें लिखा हुआ है, जिससे पता चलता है कि शोडासके राज्यकालमें 'वसु' नामक व्यक्तिने श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर एक मन्दिर, तोरणद्वार और वेदिकाका निर्माण कराया था। उसके

पश्चात् दूसरा बड़ा मन्दिर ४०० ई० के लगभग सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके शासनकालमें बना । उस समय मथुरा नगरी संस्कृति एवं कलाकी बहुत बड़ी केन्द्र थी और यहाँ हिंदू-धर्मके साथ-साथ बौद्ध तथा जैन-धर्मका भी उत्कर्ष था । इस स्थानके समीप ही बौद्धों और जैनियोंके भी विहार एवं मन्दिर बने हुए थे तथा उनके प्राप्त अवशेषोंसे यह स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्णका जन्मस्थान बौद्ध एवं जैन-धर्मानुयायियोंके लिये भी आदर और सम्मानका केन्द्र था ।

चन्द्रगुप्त द्वितीयद्वारा निर्मित इस भव्य मन्दिरको महमूद गजनवीने सन् १०१७ ई० में लूटा तथा तोड़ा । इस विशाल मन्दिरका तथा मथुराकी तत्कालीन समृद्धिका वर्णन स्वयं महमूद गजनवीके मीर मुन्शी अल्लुतनवीने अपनी 'तारीखे यामिनी' नामक पुस्तकमें इस प्रकार किया है—

‘महमूदो एक निहायत उम्दा इमारत देखी, जिसे लोग इन्सानकी न मानकर देवताओंकी बनायी मानते थे । शहरके बीचोंबीचमें एक बहुत बड़ा आलीशान मन्दिर था, जो सबसे ज्यादा खूबसूरत था । उसका बयान लफ्जों या तस्वीरोंसे नहीं किया जा सकता । सुलतान महमूदने इस मन्दिरकी बाबत खुद लिखा है कि अगर कोई आदमी इस तरहकी इमारत बनवाना चाहे तो उसे १० करोड़ दीनार (सोनेकी अशर्कियाँ) खर्च करने पड़ेंगे और उसको बनवानेमें २०० सालसे कम नहीं लगेंगे, चाहे उसके लिये ऊँचे-से-ऊँचे तख्तीकार कारीगरोंको ही क्यों न लगा दिया जाय ।’

संवत् १२०७ (११५० ई०) में, जब कि महाराजा विजयपालदेव मथुराके शासक थे, ‘जज्ज’ नामक एक व्यक्तिने श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर एक नया मन्दिर बनवाया । इसका पता ‘कटरा-केशवदेव’से प्राप्त एक संस्कृत शिला-लेखसे लगता है । सन् १५१५ ई० के लगभग श्रीचैतन्यमहाप्रभु इस मन्दिरमें पधारे थे ।

यह विशाल एवं भव्य मन्दिर भी सिकन्दर लोदीके शासन-काल अर्थात् १६वीं शताब्दीके आरम्भमें नष्ट कर दिया गया ।

इसके लगभग १२५ वर्ष बाद, जहाँगीरके शासन-कालमें, ओरछाके राजा वीरसिंहदेव बुन्देलाने उसी जन्म-स्थानपर लगभग २५० फुट ऊँचा तैंतीस लाख रुपयोंकी

लागतसे एक दूसरा भव्य मन्दिर बनवाया और उसके चारों ओर ऊँची प्राचीर बनवायी, जिसका कुछ भाग अभीतक अवशिष्ट है । उस प्राचीरके दक्षिण-पूर्वके कोनेमें एक विशाल कुआँ और उसके ऊपर एक ऊँचे बुर्ज (स्तम्भ) का निर्माण हुआ । उस कुएँका पानी लगभग ६० फुट ऊँचा उठाकर मन्दिरके प्राङ्गणमें फौवारे चलाये जाते थे । वह कुआँ और बुर्ज (स्तम्भ) आज भी विद्यमान हैं तथा उनका भी जीर्णोद्धार कराना अत्यन्त आवश्यक है ।

टेवर्नियर नामक फ्राँसीसी यात्रीने, जो सन् १६५० ई० के लगभग मथुरा आया था, इस मन्दिरका वर्णन इस प्रकार किया है—

‘जगन्नाथ और बनारसके बाद सबसे प्रसिद्ध मन्दिर मथुराका है । यह मन्दिर भारतके अत्यन्त उत्कृष्ट मन्दिरोंमेंसे एक है । उसकी बड़ी कुर्सी अठपहट्ट बनी है । मन्दिरमें जो पत्थर लगे हैं, लाल रंगके हैं । मन्दिरके चारों ओर पत्थरोंपर नक्काशी है, जिनमें भक्ति-भक्तिके जानवरोंकी आकृतियाँ बनी हुई हैं । विशाल चबूतरोंपर आधेमें मन्दिर और आधेमें जगमोहन बना है । बीचमें एक बड़ा मण्डप है । मन्दिरमें अनेक खिड़कियाँ और गौख हैं । यह मन्दिर इतना विशाल है कि यद्यपि नीची जगहमें बना है, तथापि ५-६ कोसकी दूरीसे दिखायी देता है । मन्दिर बहुत ही ऊँचा और भव्य है ।’

इटालियन यात्री मन्चीके वर्णनसे विदित होता है कि केशवदेव-मन्दिरका सुवर्णोच्छादित शिखर इतना ऊँचा था कि वह १८ कोस अर्थात् ३६ मील दूर आगरासे भी दिखायी देता था । जन्माष्टमीके दिन जब इसपर दीपक जलाये जाते थे, तब उनका प्रकाश आगरासे अच्छी तरह दिवायी पड़ता था और बादशाह उसे देखा करते थे । मन्ची भारतमें बहुत समयतक रहा और उसने कई बार केशवदेव-मन्दिरको देखा ।

यह केशवदेव-मन्दिर, जो कि भगवान् श्रीकृष्णके जन्म-स्थानपर सबसे अन्तिम स्मारक था, औरंगजेबसे नहीं देखा गया । उसने सन् १६६९ ई० में उस मन्दिरको नष्ट कर दिया और मन्दिरकी बड़ी कुर्सीके एक भागपर मन्दिरके ही मसालेसे एक ‘ईदगाह’ बनवा दी, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है । उस समयसे यह स्थान अत्यन्त दयनीय एवं दुःखद खण्डहरके रूपमें पड़ा रहकर हमारी निबलता और उपेक्षाका प्रतीक बना हुआ है ।

सन् १८०३ ई० में मथुराका प्रदेश ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत आ गया। सन् १८१५ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनीने 'कटरा केशवदेव'को नीलाम कर दिया, जिसे बनारसके तत्कालीन राजा पटनीमलने खरीदा। राजा पटनीमल एक उदार और धार्मिक व्यक्ति थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि जन्मस्थानपर भगवान् केशवदेवके मन्दिरका पुनर्निर्माण करा दिया जाय। परन्तु उनकी इच्छा पूरी न हो सकी। उनके बाद उनके उत्तराधिकारी वंशजोंका अधिकार एवं स्वामित्व कटरा-केशवदेवपर बना रहा। मथुराके मुसलमानोंने दो बार सिविल कोर्टमें कटराके तत्कालीन स्वामी राय कृष्णदासके अधिकारको चुनौती दी। परन्तु वे हार गये। इलाहाबाद हाईकोर्टने दोनों बार यह फैसला दिया कि कटरापर राय कृष्णदासका ही वास्तविक स्वत्व एवं अधिकार है।

दिवङ्गत महामना पण्डित मदनमोहनजी मालवीय भगवान् श्रीकृष्णके इस ऐतिहासिक एवं वन्दनीय जन्मस्थानकी दुर्दशासे अत्यधिक व्यथित थे। उन्होंने इस पुण्यभूमिका पुनरुद्धार करनेका विचार किया और श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाकी आर्थिक सहायतासे इसे १८ फरवरी सन् १९४४ को राय कृष्णदासजीसे खरीद लिया। परन्तु महामना मालवीय-जीकी इच्छा भी उनके जीवन-कालमें पूरी नहीं हो सकी। अपने परलोकवासके पूर्व उन्होंने श्रीकृष्णजन्मस्थानके सम्बन्धमें मार्मिक उद्गार प्रकट किये और यह अभिलाषा प्रकट की कि भगवान् श्रीकृष्णके स्मारक-निर्माणका कार्य शीघ्र सम्पन्न हो।

श्रीमालवीयजी महाराजकी अन्तिम अभिलाषाके अनुसार श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाने २१ फरवरी सन् १९५१ को 'श्रीकृष्ण-जन्मभूमि-ट्रस्ट' की स्थापना की और 'कटरा केशव-देव'पर उस ट्रस्टका अधिकार हो गया। इसी ट्रस्टकी रजिस्ट्री सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्टके अनुसार 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ' के नामसे हो गयी है। इस ट्रस्टकमेटीके सर्व-प्रथम सभापति लोकसभाके भूतपूर्व अध्यक्ष श्रीगणेश वासुदेव मावलङ्कर थे। उनके निधनके पश्चात् अब भूतपूर्व लोक-सभाध्यक्ष तथा बिहारके वर्तमान राज्यपाल श्रीएम० अनन्त-शयनम् आयङ्गर सभापति हैं। देशके चुने हुए १५ महानुभाव इसके पदाधिकारी और सदस्य हैं।

संस्थाका मुख्य उद्देश्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्णकी पवित्र जन्मस्थलीका सर्वाङ्गीण विकास करके उसको ऐसा रूप दिया जाय, जो भारतीय नीति, संस्कृति, धर्म और

दर्शनका केन्द्र बन जाय तथा जहाँसे देश-विदेशमें श्रीमद्भगवद्गीताका संदेश प्रचारित होता रहे।

इस मुख्य उद्देश्यकी पूर्तिके लिये बहुत-सी योजनाएँ थीं, जिनमें निम्नलिखित सम्पन्न हुई हैं या होने जा रही हैं— यह प्रसन्नताकी बात है।

(१) मथुराके कुछ उत्साही नवयुवकोंने स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वतीकी अध्यक्षतामें १५-१०-५३ को श्रमदान कार्य-प्रारम्भ किया और श्रीबाबूलाल बजाज एवं श्रीफूलचन्द गुप्तके नेतृत्वमें दो वर्षसे अधिक समय तक बड़ी लगन और उत्साहसे श्रमदान करके अधिकांश ऊँचे-ऊँचे टीले खोद डाले एवं गहरे गड्ढोंको भरकर जमीनको समतल कर दिया। वे सभी नवयुवक धन्यवादके अधिकारी हैं। पुराने प्राचीरके उत्तरी तथा पश्चिमी भाग भी प्रायः निर्मित हो चुके हैं।

(२) भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन एवं पूजन-अर्चनके लिये एक भव्य मन्दिरका निर्माण भी श्रीजयदयालजी डालमियाकी सहायतासे उनकी स्वर्गीया माताकी पुण्यस्मृतिमें पूरा हो चुका है। इस श्रीकृष्ण-मन्दिरमें भगवान्के बालविग्रहकी प्रतिष्ठा संवत् २०१४ में आपाद शुक्ला द्वितीयाको हुई और उद्घाटन भाद्रपक्ष कृष्णा अष्टमी संवत् २०१५ को धार्मिक मासिकपत्र 'कल्याण'के सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके द्वारा सम्पन्न हुआ। उद्घाटन करते हुए श्रीपोद्दारजीने कहा कि श्रीकृष्ण-जन्मभूमिके उद्धारका जो महान् कार्य हो रहा है, उससे देशका मुख उज्ज्वल हुआ है। यह श्रीकृष्णमन्दिर जनताके आकर्षणका केन्द्र बन गया है।

(३) भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थान 'कृष्णचबूतरा' का जीर्णोद्धार तथा उसपर संगमरमरकी एक विशाल कलापूर्ण छतरीका निर्माण सेठ श्रीरामनाथजी गोयनका मद्रासनिवासीके उदार दानसे सम्पन्न हो गया है और प्रतिदिन सहस्रों व्यक्ति उसका दर्शन करके प्रसन्नताका अनुभव करते हैं।

(४) श्रीकृष्ण-लीला इत्यादि सांस्कृतिक समारोहोंके लिये रङ्गमञ्चका निर्माण-कार्य भी सम्पन्न हो चुका है और उसके दोनों ओर कार्यालय, विशालय, पुस्तकालय, औषधालय, विश्रामालय इत्यादिके लिये पाँच-पाँच कमरोंका निर्माण उदार दाताओंके दानसे हो चुका है।

(५) एक श्रीमद्भागवत-भवनके निर्माणकी योजना भी है। यह बहुत बड़ा भवन होगा। इसमें पूरी भागवतके समस्त श्लोक संगमरमर पत्थरपर खुदवाकर लगाये जायेंगे।

शेष कार्य अभी प्रारम्भ नहीं किये जा सके हैं। आयोजन बहुत विशाल है; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णके महान् गौरव और कीर्तिके अनुरूप ही उनका स्मारक बनना चाहिये। वास्तवमें यह स्मारक एक राष्ट्रीय महासदनके रूपमें होगा, जो गीतागायक श्रीकृष्णके जीवन और सार्वभौम दार्शनिक सिद्धान्तोंसे अनुप्राणित होगा। तभी आजके अन्धकारमें भटकते हुए मानव-समाजको इस स्मारकद्वारा सच्चे मार्गपर अग्रसर होनेकी प्रेरणा मिल सकेगी।

भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य-स्थान भारतकी जीवनी-शक्ति और दृढ़ताका प्रतीक है। हमें इसपर गर्व करना चाहिये। प्रत्येक आक्रमणकारीने इसका विध्वंस किया, परन्तु यह बार-बार उठ खड़ा होता गया। अब फिर इसके उठ खड़े होनेका समय आ गया है, जिसके लिये समस्त श्रीकृष्ण-प्रेमियोंकी उदारता एवं सहयोग वाञ्छनीय है।

पत्रव्यवहारादिका पता है—

श्रीभगवानदास भार्गव

(रियायर्ड डिस्ट्रिक्ट व सेशनस जज)

संयुक्त मन्त्री, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा (उ० प्र०

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय !

दैनिक जीवनमें 'स्वर-विज्ञान'*

(लेखक—श्रीशशिप्रकाशजी शर्मा, एम० ए०, बी० कॉम०, विशारद)

नाड़ी-शोधनकी सहज प्रक्रिया इससे पूर्व लिखी जा चुकी है। स्वरयोगका अभ्यास करनेसे पूर्व नाड़ी शुद्ध करना और उनको संयमित कर लेना नितान्त आवश्यक है। बिना ऐसा किये 'स्वर-विज्ञान'का लाभ उठाना और उसके चमत्कारिक प्रभावका परिचय पाना सम्भव नहीं है। यद्यपि यह कार्य सुगम नहीं है तथापि नित्यके नियमित अभ्यास और लगनसे अवश्य ही लाभ होता है और यदि साधक अनवरत अभ्यास करने, संयम तथा धैर्यसे इसकी अनुभूति करनेमें जुट जाय तो एक दिन अवश्य ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

स्वस्थाने तु समासीनो निद्रां चाहारमल्पकम्।

चिन्तयेत्परमात्मानं यो वेद स भविष्यति ॥

अब यह विचारणीय है कि कौन-सा कार्य किस नाड़ीके प्रवाहके समय करना शुभ फल प्राप्त करानेवाला होता है अथवा किस नाड़ीके प्रवाहके समय कौन-कौनसे कार्य सिद्ध होते हैं।

इडा नाड़ीके चलते समय सभी स्थिर कार्य और पिंगला नाड़ीके चलते समय सभी अस्थिर कार्य सिद्ध होते हैं। जब सुषुम्णा नाड़ी चलती हो तब कोई भी लौकिक कार्य सिद्ध नहीं होता। उस समय आध्यात्मिक कार्य जैसे ध्यान, योग, स्मरण-कीर्तन आदि कार्य करनेमें मन स्थिर और एकाग्र होता है और सिद्धि मिलती है।

मध्यमा भवति कूरा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु।

सर्वत्र शुभकार्येषु वामा भवति सिद्धिदा ॥

और भी—

सूर्यनाडीप्रवाहेण रौद्रकर्माणि कारयेत्।

महात्मा चरणदासजी लिखते हैं—

चर कारजको मानु है थिर कारजको चंद।

सुषमन चलत न चालिये तहाँ होय कुछ द्वंद ॥

गोंव परगने खेत पुनि ईधर ऊधर मीत।

सुषमन चलत न चालिये बरजत है रणजीत ॥

नीचे विस्तारसे इन कार्योंका उल्लेख है जो इडा, पिंगला और सुषुम्णामें करनेसे सिद्धि प्राप्त करते हैं।

इडा नाड़ी

ग्रह-प्रवेश, नगर-प्रवेश, खेती करनेके सभी कार्य, मित्र बनाना, संधि करना, विवाह आदि शुभ संस्कार, भूषण-वस्त्र बनाना और धारण करना, दान करना, तीर्थके लिये प्रस्थान करना, कुआँ-नल आदिका निर्माण करना, मन्दिर-ग्रहका निर्माण करना, मूर्तिकी प्रतिष्ठा करना, अध्ययन करना, दीक्षा लेना, वृक्ष रोपना, चौपाया आदिको घर लाना, व्यापार करना, खाद्य क्रय करना, औषध लेना, हाथी-घोड़े

* लेखका पूर्वांश 'कल्याण'के मार्च, १९६४ अङ्कमें पढ़िये।

आदिकी सवारी करना, ललित कलाका अभ्यास करना और कराना, योगाभ्यास करना आदि शुभ और स्थिर कार्य इडा नाड़ीके चलते समय सिद्ध होते हैं। जब आपके बायें नासिका-छिद्रसे श्वास निर्वाध गतिसे आता-जाता हो, उस समय उपर्युक्त कार्य करना सिद्ध प्राप्त करता है।

पिङ्गला नाड़ी

भोजन, स्नान, व्यायाम और युद्धाभ्यास करना, भयंकर विद्या पढ़ना या सीखना, घोर कर्म करना, युद्धके लिये प्रस्थान करना और युद्ध करना, सम्भोग करना, ऋण देना और वापस माँगना, शत्रुके पास जाना, दुष्ट कर्म करना, जुआ खेलना, तान्त्रिक साधना करना, हाथी-बोड़ेकी सवारीकी शिक्षा ग्रहण करना, विष और भूत-प्रेतवाधा उतारना, मदिरा पान करना, पत्थर-रत्न और काठ एवं लौहका काटना, चोरी करना, मारण-मोहन-वशीकरण एवं उच्चाटन-स्तम्भन आदि कार्य करना और राजाके दर्शन करना आदि अस्थिर और क्रूर कार्य पिङ्गला नाड़ीके चलते समय सिद्ध होते हैं। जब आपके दायें नासिका-छिद्रसे श्वास अबाध गतिसे आता-जाता हो, उस समय उपर्युक्त कार्य करना सिद्ध प्राप्त करता है।

सुषुम्णा नाड़ी

यदि नासिकाके दोनों छिद्रोंसे श्वास आता-जाता हो अथवा एक-एक दो-दो क्षणोंमें बदल रहा हो अर्थात् अल्प समय इडा नाड़ीसे और अल्प समय पिङ्गला नाड़ीसे वायु प्रवाहित हो रही हो तो जानना चाहिये, सुषुम्णा नाड़ी चल रही है। ऐसी स्थितिमें कोई भी लौकिक कार्य नहीं करना चाहिये। यह नाड़ी सब कार्योंको बिगाड़नेवाली है। इस नाड़ीके प्रवाहकालमें प्रस्थान करनेसे मृत्यु तक हो जाती है, कार्य तो कभी भी सिद्ध नहीं होता*। इस नाड़ीसे श्वास बहनेकी स्थितिमें केवल ईश्वराधना, आध्यात्मिक साधना और योगाभ्यास आदि कार्य करना ही अच्छा है।

श्वास परिवर्तित करना

कभी-कभी ऐसा भी होता है जब आपको कोई ऐसा कार्य करना होता है जिसके अनुकूल आपकी नाड़ी प्रवाहित नहीं हो रही है। प्रातःकाल शय्या त्यागते समय जिस नाड़ीका प्रवाह उस दिन शुभ होता है, उसके विपरीत कोई नाड़ी चल रही होती है। ऐसी दशामें दो-ढाई बड़ी दूसरी नाड़ीके चलनेकी प्रतीक्षा करना अर्थात्

अपने कार्यके अनुकूल नाड़ीके परिवर्तित होनेकी प्रतीक्षा करना असम्भव होता है। आपको यात्रा करनी है, गाड़ीके छूटनेका समय हो गया है और उसके अनुकूल श्वास नहीं चल रहा है, यात्रा अनिवार्य है। न तो आप यात्रा स्थगित कर सकते हैं, न प्रतिकूल श्वास-प्रवाहमें यात्रा प्रारम्भ करनी है, ऐसी दशामें क्या करना चाहिये ?

उपर्युक्त स्थितिमें श्वास-प्रवाहको अपने कार्यके अनुकूल परिवर्तित कर लेना चाहिये। श्वास परिवर्तित करना प्रारम्भमें कठिन प्रतीत होगा किंतु धीरे-धीरे अभ्यास करते रहनेसे शीघ्र ही वह वशमें आ जायगा और फिर मनोनुकूल उसे परिवर्तित कर लेना कठिन न रहेगा। नीचे श्वास परिवर्तित करनेकी प्रक्रियाएँ दी जा रही हैं। साधकको इनमेंसे किसी भी एकका अभ्यास करना चाहिये।

१. नयी और बिल्कुल साफ रुईपर श्वेत, कोमल और स्वच्छ कपड़ा लपेटकर एक इतनी बड़ी गोली बनाओ जिसको नासिका छिद्रमें ठूसनेसे श्वासकी गति रुक जाय। ध्यान रहे, रुई स्वच्छ और नयी हो और कपड़ा कोमल और स्वच्छ हो। इस गोलीको उस नासिका-छिद्रमें रखो, जिससे श्वास आ-जा रहा है, तत्पश्चात् दूसरे नासा-छिद्रसे श्वास खींचने और छोड़नेका प्रयास करो। कुछ समयके प्रयाससे इस कार्यमें सफलता मिल जायगी और मनोवाञ्छित नासिका-छिद्रसे श्वास आने-जाने लगेगा।

२. रुईकी गोली न भी बनायी जाय, तब भी यह प्रक्रिया पूर्ण हो सकती है। अपने दायें हाथके अँगूठेसे उस नासिका-छिद्रको दाब लो जिसमें श्वासका प्रवाह बंद है। तत्पश्चात् श्वास खींचो और पूर्ण होनेपर अनामिकासे तत्काल उसे दब कर दूसरे नासिका-छिद्रसे श्वास बाहर निकाल दो। निरन्तर इसी प्रकार कुछ देरतक करनेसे आपके कार्यके अनुकूल नासिका-छिद्रसे श्वास आने-जाने लगेगा।

३. आपका जो श्वास चल रहा हो, उसी करवटके अङ्गोंको बलपूर्वक दबाकर लेट जाइये। कुछ समय इसी प्रकार लेटे रहनेसे स्वयं श्वास परिवर्तित होने लगेगा और अन्तमें आपके कार्यके अनुकूल नाड़ीसे श्वास प्रवाहित होने लगेगा।

उपर्युक्त किसी भी प्रक्रियासे अपने कार्यके अनुकूल नाड़ी परिवर्तन किया जा सकता है।

* लेखकने अनेक बार इस तथ्यका कटु अनुभव किया है।

गोपाष्टमी-महोत्सवपर गोरक्षा-राष्ट्रीय-सप्ताहका देशव्यापी आयोजन

[सम्मान्य श्रीजयन्तीलालजी मानकर और पं० श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा, मन्त्री, भारत-गोसेवक-समाज, दिल्लीने निम्नलिखित आयोजनकी सूचना भेजी है। इसे 'कल्याण'के पाठक पढ़ें और अपने-अपने यहाँ यथासाध्य इस प्रकारके आयोजनकी व्यवस्था करके गोमाताकी सेवा करें, यह विनीत निवेदन है।—हनुमानप्रसाद पोद्दार, सम्पादक]

अभी कुल ही समय पूर्व श्रीवृन्दावनमें अखिल भारतीय गोरक्षा-सम्मेलन पूज्य ब्रह्मचारी श्रीप्रमुदत्तजी महाराजकी संनिधिमें सम्पन्न हुआ था। देशके विभिन्न स्थानोंसे गो-सेवक एवं गो-भक्त उसमें सम्मिलित हुए थे। 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ'के सरसंघ-संचालक गुरुजी श्रीगोलवलकरजीने सम्मेलनका उद्घाटन किया था तथा सुप्रसिद्ध गो-भक्त श्रीगजाधरजी सोमानीने सम्मेलनकी अध्यक्षता की थी।

सम्मेलनने अपने मुख्य प्रस्तावद्वारा गोपाष्टमी संवत् २०२२ तक समग्र भारतमें कानूनद्वारा सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या-को रोकनेकी माँग की है। सरकारद्वारा इस माँगकी पूर्ति न होनेपर शान्तिमय आन्दोलनद्वारा गोहत्या-निषेध-अभियान जारी करनेका संकल्प किया है। साथ ही, जिन राज्योंमें अभीतक गोवध चालू है, वहाँ गोवध-निषेधका कानून अविलम्ब बनानेके लिये राज्य-सरकारोंसे माँग की गयी है। सम्मेलनने गोपालन एवं गोसंवर्धनके विशाल कार्यक्रमको व्यापकरूपसे सम्पन्न करनेकी दृष्टिसे कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये हैं।

देशमें गोवध-निषेधके आन्दोलन एवं गोसंवर्धनके रचनात्मक कार्यको सम्पन्न करनेके लिये प्रबल जनमत जाग्रत करना आवश्यक है। इसके लिये आगामी गोपाष्टमीके अवसर-पर ५ नवम्बर १९६४ तक गोरक्षा-राष्ट्रीय-सप्ताह मनानेका निश्चय किया गया है।

देशके सुविख्यात यशस्वी, त्यागी, महान नेता स्वर्गीय महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीयने गो-सेवाकी राष्ट्रीय भावना-को पोषित करनेकी दृष्टिसे इस तरहके गोरक्षा-राष्ट्रीय-सप्ताह मनानेका निर्देश दिया था। राष्ट्रपिता स्वर्गीय महात्मा गाँधी-जीने भी समय-समयपर गोरक्षा-सम्बन्धी अपनी सुन्दर भावनाएँ व्यक्त की थीं।

हमारे ऋषि-महर्षियों एवं भगवान् श्रीराम तथा भगवान् श्रीकृष्णके गोरक्षा एवं गोसेवाके पुनीत आदर्श तो सर्वविदित हैं। अतएव देशकी प्राचीन परम्परा एवं संस्कृतिद्वारा समर्थित

गोसेवाकी सुदृढ़ भावनाको ध्यानमें रखते हुए तथा वर्तमानमें कृषि-उत्पादन एवं आर्थिक विकासकी दृष्टिसे गोपालनके महत्त्व-को ध्यानमें रखते हुए गोरक्षण एवं गोसंवर्धनके विशाल कार्यक्रमको सरकार एवं जनताके सम्मुख राष्ट्रव्यापी अभियान-के रूपमें प्रस्तुत करना नितान्त आवश्यक है। अतः विनम्र शब्दोंमें निवेदन है, आप अपने यहाँकी सभी धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं देशके विकासमें रुचि रखनेवाली संस्थाओं तथा गोभक्त सज्जनोंके सहयोगसे आगामी गोपाष्टमीके पुनीत अवसरपर राष्ट्रीय-सप्ताह मनानेका विशाल कार्यक्रम बनायें।

इस आयोजनको सफल बनानेके लिये आप अपने यहाँ एक प्रभावशाली समिति बनावें जो आपके यहाँ इस समारोहकी विस्तृत रूपरेखा तैयार करे।

गोरक्षा-राष्ट्रीय-सप्ताहका कार्यक्रम

१—इस सप्ताहमें अपनी प्राचीन परम्पराके अनुसार गोपूजन एवं गोसेवाके विशेष आयोजन सार्वजनिक रूपसे किये जायें।

२—सप्ताहके अंदर एक विचार-गोष्ठीका आयोजन किया जाय, जिसमें गोसंवर्धन-सम्बन्धी सभी प्रश्नोंपर चर्चा की जाय और रचनात्मक कार्यक्रमकी विस्तृत योजना तैयार करके उसे क्रियान्वित किया जाय।

३—जिन राज्योंमें अभी गोवध चालू है, वहाँ राज्य-सरकारके मुख्यमन्त्री एवं अन्य मन्त्रियोंसे मिलकर गोवध-निषेध-कानून बनानेका आग्रह किया जाय।

४—सप्ताहमें प्रतिदिन स्थान-स्थानपर सार्वजनिक सभा-का आयोजन करके गोवध-निषेध एवं गोपालनके लिये लोगों-को प्रेरित किया जाय। जनतामें गौके दूधका उपयोग करने-का विशेषरूपसे प्रचार किया जाय।

५—आपके यहाँ जितनी गोशालाएँ एवं गोसंवर्धन-सम्बन्धी संस्थाएँ कार्य करती हों, उनके कार्यको विस्तृत और सफल बनानेके लिये योजना बनायी जाय। गोदुग्ध-शाला व्यापारिक ढंगसे संचालन करनेकी योजना बनायी

जाय । गोभक्त उद्योगपतियोंको इस प्रकारकी दुग्धशालाएँ और गोसंवर्धन-केन्द्र स्थापित करनेकी प्रेरणा दी जाय ।

६-गोचरभूमि एवं घास-चारा आदिकी व्यवस्थाको विस्तृत करनेकी योजना बनायी जाय । नगरोंमें गोपालनकी कठिनाइयोंको दूर करनेका मार्ग निकाला जाय ।

७-समाचारपत्रोंसे सम्पर्क स्थापित कर गोवध-निषेध एवं गोसंवर्धन-सम्बन्धी लेख एवं विज्ञप्तियाँ प्रकाशित करनेकी व्यवस्था की जाय ।

८-प्रभावशाली कार्यकर्ताओंकी समितिका संगठन किया जाय, जो नियमितरूपसे इस कार्यक्रमको चलानेमें संलग्न रहें ।

९-गोसेवकोंका संगठन किया जाय जिसमें हजारों गोसेवकोंसे हस्ताक्षर लिये जायें, जो गोसेवाक्षेत्रमें नियमित-रूपसे काम करने, समयपर आने, गोरक्षाके लिये उत्सर्ग करनेका संकल्प करें । यदि कोई व्यक्ति विशेष काम नहीं कर सके तो प्रतिवर्ष कम-से-कम १) रु० गोसेवा फंडमें दे । इस फंडका तीन चौथाई अंश स्थानीय गोसेवाके कार्यमें लगाया जाय । इसकी रूपरेखा 'गोसेवक-समाज' द्वारा तैयार कर प्रचारित की जायगी ।

१०-मन्दिरों, मठों एवं धार्मिक प्रवृत्तिके विद्वानों एवं नेताओंके विशेष सहयोगसे कार्यक्रमकी रूपरेखा तैयार की जाय ताकि इनके द्वारा जनताको गोसेवाकी सतत प्रेरणा मिलती रहे ।

११-गोपाष्टमीके दिन सर्वत्र सार्वजनिक सभाओंका आयोजन किया जाय, उससे पहले गायोंका नगरमें जुलूस

निकाला जाय । सभाओंमें गोरक्षण एवं गोसंवर्धनके ऊपर प्रभावशाली नेताओं और विद्वानोंके महत्वपूर्ण भाषण हों । एक प्रस्तावद्वारा देशमें होनेवाली गोहत्याका निषेध किया जाय और अ० भा० गोरक्षा-सम्मेलन वृन्दावनकी सम्पूर्ण गोहत्या-बन्दी-कानून बनानेकी माँगका समर्थन किया जाय तथा शासनसे कानूनद्वारा समग्र गोवंशकी हत्याको अविलम्ब बंद करनेकी विनम्र किंतु प्रभावपूर्ण माँग की जाय । जनतासे इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उत्सर्ग और बलिदान करनेका अनुरोध किया जाय । प्रस्तावकी प्रतियाँ माननीय राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री महोदयके पास भेजी जायें ।

प्रस्ताव यह है—

गत १६-१७ अगस्त १९६४ को वृन्दावनमें आयोजित अ० भा० गोरक्षा सम्मेलनने गोपाष्टमी संवत् २०२२ तक कानूनद्वारा सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या बंद करनेकी माँगका जो प्रस्ताव पास किया था, यह सार्वजनिक सभा सम्मेलनकी उस माँगका पूर्णरूपसे समर्थन करती है और भारत-सरकारसे अनुरोध करती हैं कि वह उपर्युक्त कानून बनाकर समग्र देशमें सम्पूर्ण गोवंशकी हत्याको तुरंत बंद करा दे । इस सभाका यह स्पष्ट मत है कि जबतक देशमें पूर्णतया गोवंशकी हत्या बंद नहीं होगी, तबतक देशमें अर्थसंकट और अन्न तथा दुग्ध आदि पदार्थोंका अभाव बना रहेगा । सभा जनतासे अनुरोध करती है कि वह गोरक्षा-निरोध अभियानमें सक्रिय भाग लेकर गोहत्याके कलङ्कका निवारण करनेमें सहायक हो ।

(स्थान, समयका विवरण, सभाके अध्यक्षके हस्ताक्षर)

प्रभुसे प्रार्थना

जिस गोमाताके रक्षण-हित ग्रहण किया प्रभुने नर-रूप ।
गोप बने, गो-रजमें खेले गो-वत्सोंके साथ अनूप ॥
गोपालनका व्रत धारण कर त्रिभुवननाथ बने गोपाल ।
वन वन गाय चराई, लेकर कर लकुटी वन नंदके लाल ॥
वही गाय है आज कट रही उसी पुण्य-भारतमें आज ।
दूध-दही-घृतके अभावमें दुखी हो रहा सभी समाज ॥
प्रभु ! सबको सुबुद्धि दो, सबका हरो तुरंत घोर अज्ञान ।
गो अवध्य हो, मिट जायें सब पाप-ताप-दुर्भाग्य महान ॥

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

नामु राम को कलपतरु कलि कल्याण निवास । जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदास ॥

नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला ॥

राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥

राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकाल । जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ॥

आजके इस आधि-व्याधि, रोग-शोक, द्रोह-द्वेष, स्पर्धा-कलह, वैर-हिंसा, वैषम्य-दारिद्र्य, तमसाच्छन्न बुद्धि-अहंकार, दुर्विचार-दुर्गुण तथा दुष्क्रिया आदि उपद्रवोंसे पीड़ित, अकाल, अवर्षा, अतिवर्षा, अग्निदाह, भूकम्प, महामारी आदि दैवी प्रकोपोंसे पूर्ण; अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, दुराचार, असदाचार, व्यभिचार और स्वेच्छा-चार तथा भगवद्बिमुखतारूप दुर्भाग्यसे संयुक्त अशान्तिपूर्ण युगमें विश्व-प्राणीको इन सभी उपद्रवों, प्रकोपों तथा दुर्भाग्यसे मुक्त कर सर्वाङ्गीण सुखी बनानेके लिये तथा मानव-जीवनके चरम तथा परम लक्ष्य मोक्ष या परम प्रेमास्पद भगवान्के प्रेमकी प्राप्ति करानेके लिये एकमात्र 'भगवन्नाम' ही परम साधन है । सभी श्रेणियोंके, सभी जातियोंके सभी नर-नारी मङ्गलमय भगवन्नामका जप कर सकते हैं । भगवन्नाम-जपमें कोई खास प्रयास भी नहीं है, न कोई अधिकारि-भेद है । भगवन्नामका फल है महान् ! लोक-परलोक, स्वार्थ-परमार्थ—सभी क्षेत्रोंमें भगवन्नाम अमोघ है । इस समय चारों ओर अशान्तिके बादल छाये हैं, युद्धकी घटाएँ धुमड़ी आ रही हैं, आये दिन भयानक बाढ़, भूकम्प और दुर्घटनाओंके कारण धन-जनका भयंकर विनाश होनेके समाचार मिल रहे हैं । मनुष्य भगवान्को भूलकर राक्षस बना जा रहा है । इन सारी आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विपत्तियोंके निवारणके लिये भगवन्नाम ही परम साधन है । इसीलिये 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे प्रतिवर्षकी भाँति प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक स्वयं प्रेमके साथ अधिक-से-अधिक नाम-जप करें तथा प्रेमपूर्वक प्रेरणा करके दूसरोंसे करावें । यही परम हित है । गत वर्षकी भाँति इस वर्ष भी—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

—इस उपर्युक्त १६ नामवाले परम पवित्र मन्त्रके २० (बीस) करोड़ जपके लिये ही प्रार्थना की जाती है । नियमादि इस प्रकार हैं—

१-यह श्रीभगवन्नाम-जप जपकर्ताके, धर्मके, विश्वके—सबके परम कल्याणकी भावनासे ही किया-कराया जाता है ।

२-इस वर्ष इस जपका समय कार्तिक शुक्ल १५ गुरुवार (१९ नवम्बर १९६४) से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ल १५ गुरुवार (१५ अप्रैल १९६५) तक रहेगा । जप इस समयके बीच किसी भी तिथिसे करना आरम्भ किया जा सकता है, पर इस प्रार्थनाके अनुसार उसकी पूर्ति चैत्रशुक्ल १५ सं० २०२२ को समझनी चाहिये । पाँच महीनेका समय है । उसके आगे भी जप किया जाय, तब तो बहुत ही उत्तम है । करना चाहिये ही ।

३-सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध-युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं ।

४-एक व्यक्तिको प्रतिदिन 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' इस मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य करना चाहिये । अधिक कितना भी किया जा सकता है ।

५-संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे, अँगुलियोंपर अथवा किसी अन्य प्रकारसे रखी जा सकती है ।

६-यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय । प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए—सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है ।

७-बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जन-से जप करवा लेना चाहिये । पर यदि ऐसा सम्भव न हो तो स्वस्थ होनेपर या उस कार्यकी समाप्तिपर प्रतिदिनके नियमसे अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये ।

८-घरमें सौरी-सूतकके समय भी जप किया जा सकता है ।

९-स्त्रियाँ रजोदर्शनके चार दिनोंमें भी जप कर सकती हैं, किंतु इन दिनोंमें उन्हें तुलसीकी माला हाथमें लेकर जप नहीं करना चाहिये । संख्याकी गिनती किसी काठकी मालापर या किसी और प्रकारसे रख लेनी चाहिये ।

१०-इस जप-यज्ञमें भाग लेनेवाले भाई-बहन ऊपर दिये हुए सोलह नामोंके मन्त्रके अतिरिक्त अपने किसी इष्ट-मन्त्र, गुरु-मन्त्र आदिका भी जप कर सकते हैं । पर उस जपकी सूचना हमें देनेकी आवश्यकता नहीं है । हमें सूचना केवल ऊपर दिये हुए मन्त्र-जपकी ही दें ।

११-सूचना भेजनेवाले लोग जपकी संख्याकी सूचना भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि भेजनेकी भी आवश्यकता नहीं है । सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये ।

१२-संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं । उदाहरणके रूपमें यदि कोई 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिनके मन्त्र-जपकी संख्या एक सौ आठ (१०८) होती है, जिनमेंसे भूल-चूकके लिये आठ मन्त्र बाद देनेपर १०० (एक सौ) मन्त्र रह जाते हैं । अतएव जिस दिनसे जो बहिन-भाई मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये ।

१३-सूचना प्रथम तो मन्त्र-जप आरम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र-पूर्णिमातक जितना जप करनेका संकल्प किया गया हो, उसका उल्लेख रहे तथा दूसरी बार चैत्र-पूर्णिमाके बाद, जिसमें जप प्रारम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र-पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या हो ।

१४-जप करनेवाले सज्जनोंको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव कम हो जायगा । स्मरण रहे—ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक बनते हैं ।

१५-सूचना संस्कृत, हिंदी, मारवाड़ी, मराठी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी अथवा उर्दूमें भेजी जा सकती है ।

१६-सूचना भेजनेका पता—'नाम-जप-विभाग,' 'कल्याण'-कार्यालय', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

प्रार्थी—चिम्पनलाल गोस्वामी

सम्पादक—'कल्याण', गोरखपुर

पढ़ो, समझो और करो

(१)

पितृ-ऋणशोधका आदर्श कार्य

कुछ मास पूर्वकी एक घटना है। सम्मान्य श्री × × × अग्रवाल × × × स्थानके निवासी हैं। आप ईश्वरके परम (भक्त) एवं माननीय गुणोंसे परिपूर्ण हैं। शरीरसे एकदम अपंग हैं। आपका अधिकतर समय सत्सङ्ग एवं गुरुजनोंकी सेवामें ही व्यतीत होता है। आपकी उम्र इक्यावन वर्षोंकी हो चुकी है।

आपके पिता श्री के हाथका तैंतालीस वर्ष पहलेका ऋण परिस्थिति प्रतिकूल होनेके कारण शोध नहीं हो सका था। पिताका देहावसान बाईस वर्ष पूर्व हुआ था।

तबसे आप बराबर ईश्वरसे ऋण-मुक्तिके लिये प्रार्थना करते रहते थे। इनकी अन्तकी सच्ची करुणतम पुकार भगवान्‌के हृदय-पटलपर प्रतिध्वनित हो उठी। आर्थिक स्थिति संतोषजनक न होनेपर भी हृदयकी उच्चताने गरिमाका परिचय दिया और एक छोटेसे व्यापारमें कुछ सफलता पाते ही आपने सभी ऋणदाताओंको एकत्र करके हजारों रुपये नकद देकर उनसे ऋण-मुक्ति-पत्र प्राप्त किये। ऋण-मुक्ति-पत्र-दाताओंने भूरि-भूरि प्रशंसा करके इनके इस महान्‌ आदर्श कार्यका गौरव बढ़ाया। ऋण पुराना होनेके कारण कुछ लोग तो भूल ही गये थे और कुछ अनभिज्ञ थे। परन्तु उनको यथोचित सम्मानके साथ ऋण चुकाकर आप पितृ-ऋणसे मुक्त हुए। धन्य हैं। आज भी भूमण्डल-पर ऐसे व्यक्ति हैं। ऋणमुक्तिका सारा कार्य मेरी उपस्थितिमें ही सम्पन्न हुआ था।

इन महानुभावने इस विषयको अप्रकाशित ही रखनेकी इच्छा प्रकट की थी। मेरे इस आग्रहपर कि इस प्रकारके आदर्श कार्यको छिपे रहनेपर लोग इसका अनुकरण कैसे कर सकते हैं, आपने संकोचके साथ अनुमति दी।*

—गोपालकृष्ण अग्रवाल

* घटना सर्वथा सत्य है, नाम तथा रूप्योंकी संख्या जान-बूझकर ही नहीं छपी गयी है।

(२)

पैतृक धंधेमें लज्जा कैसी ?

आजकल प्रायः प्रत्येक विद्यार्थी कालेजमें अध्ययन करके निकलता है तो वह अपने माता-पिताके काममें मदद करनेमें अप्रतिष्ठा (नामूसी) का अनुभव करता है, उसे इससे अपने मित्रोंमें नीचा दीखनेका डर लगा रहता है। इससे सर्वथा विरुद्ध एक उदाहरण देखनेको मिला।

एक दिन संध्याके समय मैं बड़ोदामें सूरसागर तालाबके पास पुस्तकें खरीदने गया था। वहीं सूरसागरके सामने एक हेयर कटिंग सलून (नाई-घर) में जाकर हजामत बनवाने बैठा। एक प्रौढ़ उम्रके मनुष्यने मेरे बाल काटने शुरू किये। कुछ ही देर बाद एक सूट-बूटधारी युवक वहाँ आया।

उसने कहा—‘लाओ बापूजी, इन भाईका बाल मैं बना दूँ।’ उसने मेरे बाल बनाने आरम्भ किये। बाल काटते-काटते उसने पूछा—

‘आप प्रि-साइन्समें अध्ययन कर रहे हैं न ?’

मैंने सहज ही प्रश्न किया—‘आपको कैसे पता लगा ?’

‘मैंने आपको ‘प्रि. युनिटके मकानके पास कई बार देखा है ?’

मैं असमंजसमें पड़ गया—मैंने पूछा—‘आप कालेजमें क्या करते हैं ?’

नम्रतापूर्ण उत्तर मिला, ‘जी! मैं इंजिनियरिंगके अन्तिम वर्षमें अध्ययन कर रहा हूँ।’

‘हैं!’ मैं तो आश्चर्यचकित हो गया। ‘क्या आप इंजिनियरिंगके अन्तिम वर्षमें अध्ययन करते हैं ?’

मैं विचारोंके जालमें फँस गया और यह पूछ बैठा—‘आप इतना ऊँचा अध्ययन करते हैं, फिर इस हजामत-जैसा काम करनेमें आपको लज्जा नहीं आती ? आपके मित्र क्या आपकी दिल्लगी नहीं उड़ाते ?’

युवकने स्वस्थता और नम्रतासे उत्तर दिया। अपने पुस्तैनी धंधेमें शरम कैसी ? हमारे वंशपरम्परागत कामको हम कैसे भुला दें ? मैं तो बचपनसे ही पढ़ाईके साथ-साथ यहाँ भी काम करता हूँ। फिर यहाँतक पहुँचना भी हुआ

किसके प्रतापसे ? जिन माता-पिताने परिश्रम करके हमको इतनी ऊँची पढ़ाई करानेका कष्ट सहा, तनतोड़ मेहनत करके हमको इतने ऊँचेपर पहुँचाया, क्या उनका ऋण हमें भूल जाना चाहिये ? क्या उनके काममें सहयोग नहीं देना चाहिये ?

इन प्रश्नोंका मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। बाल बन गये थे, मैं पैसे देकर चलने लगा। चलते समय उस सुपुत्रके (युवकको अब मुझे सुपुत्र ही कहना चाहिये) अन्तिम शब्द मेरे कानोंमें गूँज रहे थे। मेरे मनमें उसके प्रति मानकी भावना उदय हो गयी थी। (अखण्ड आनन्द)

—सुभाष एस. पटेल

(३)

दो विदेशी महानुभावोंकी आदर्श सुहृदता

घटना २३ फरवरी १९६३ शनिवारकी है।

कालेजसे आकर सो गया और चार बजे सायंकाल उठा। अचानक यह विचार उत्पन्न हुआ कि घर चला जाय। साढ़े-चार बजेसे चलना प्रारम्भ किया। मेरा ग्राम भोपालसे १४ मील दूर दक्षिणमें स्थित है। कभी-कभी मैं साइकिलसे ही घर जाया करता हूँ।

एक छोटी-सी बदली उठी और रिमझिम वर्षा होने लगी। पाँच-सात मिनटतक इसी अवस्थामें साइकिल चलाता गया; किंतु फिर अधिक वर्षा होनेके कारण मुझे एक वृक्षकी छायाका सहारा लेना पड़ा। ५। बजेसे ५।।। बजेतक खड़ा रहना पड़ा।

पुनः चलना प्रारम्भ किया, किंतु अबकी बार यात्रामें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। गाड़ीके दोनों ओरके मडगाटोंमें मिट्टी भर जाने और फिर उसको निकालनेका क्रम एक घंटेतक यानी ५।।। बजेसे ६।।। बजेतक चलता रहा और मुश्किलसे मैं दो फर्लींग रास्ता तय कर सका।

बहुत अधिक थक चुका था। बहुत परेशान भी था। ध्वराकर मैंने साइकिलको बैलगाड़ीके रास्तेसे उठाकर चारागाह-स्थित एक सघन झाड़ीमें पटककर चलनेका विचार किया, किंतु आन्तरिक भावनाने इस विचारको क्रियात्मक रूप नहीं देने दिया। भाग्यसे उस दिन कोई भी बैलगाड़ी उस रास्तेमें मेरी ओरकी ही नहीं, बल्कि किसी भी ओरकी नहीं मिली।

अब मेरा वही हाल था जो एक घोवीके कुत्तेका होता है; क्योंकि पिछला गाँव एक मील पीछे रह गया था और आगे आनेवाला गाँव भी दो मील दूर था। उस समय अंधेरा भी अधिक हो गया था। जब व्यक्ति सब ओरसे निराश हो जाता है, तब एकमात्र भगवान्की शरण याद आती है। मैं मन-ही-मन भगवान्से प्रार्थना कर रहा था—‘हे भगवन् ! अब तो किसी भी प्रकार आपको मेरी नैया पार लगानी पड़ेगी, मैं आपकी शरण हूँ।’

अचानक मैंने, कुछ क्षण पश्चात् मोटरकी रोशनी देखी और फिर धरधराहटकी आवाज भी सुनी। पहले ये सब मुझे स्वप्नमात्र लगे, किंतु तुरंत ही एक जीप बहुत पास आती दिखायी दी। शायद करुणासागरने मेरी करुण पुकार सुन ली थी।

मैं वहीं उस चारागाहमें स्थित झाड़ीके पाससे भागा और मैंने जीप रुकवानेका प्रयास किया। हाथ उठाकर जोरसे चिल्लाया—‘रोकना ! रोकना ! रोकना !’ जीपकी धरधराहटमें मेरी आवाज दब गयी, किंतु ड्राइवरने मुझे भागता देखकर आगे चलकर गाड़ी रोक दी। ड्राइवरने प्रश्न किया—‘क्या है ? क्या है ?’

मैंने सारी घटना सुना दी। बेचारे ड्राइवर महोदय स्वयं गाड़ीसे उतरे और मेरी साइकिल उठाकर जीपमें रखने लगे। साइकिल बहुत भारी हो गयी थी, इसलिये उसका एक भाग मुझे पकड़ना पड़ा, तब कहीं दूसरा भाग उन्होंने पकड़कर जीपमें रक्खा।

गाड़ी स्टार्ट हुई। रास्तेमें आगे और भी बहुत वर्षा हुई थी। ड्राइवरके पास ही उनके एक साथी भी बैठे हुए थे। उन्होंने मेरे बारेमें सारी जानकारी प्राप्त की और मैंने भी उनके बारेमें।

ये दोनों सज्जन शिकार खेलनेके लिये जा रहे थे। अगला गाँव आया। उस समय रातके ७ बजकर २० मिनट हुए थे। उन्होंने मुझसे पूछा ‘अब क्या करोगे ?’ यह इसलिये पूछा कि मेरा गाँव अब भी यहाँसे आधा मील था। इनको इसी ग्रामके पाससे होकर जाना था। उत्तरमें मैंने कहा—‘मैं यह गाड़ी किसी भी परिचित व्यक्तिके घर रखकर पैदल घर चला जाऊँगा।’ पुनः प्रश्न हुआ—‘तुम डरोगे तो नहीं ?’ उत्तर दिया—‘नहीं सर !’

ड्राइवरके साथी महोदयने ड्राइवरसे कहा—‘शिकारको फिर चलेंगे, चलो इनको पहले इनके घर पहुँचा दें, बच्चा है डर लगेगा’ आदि ।

मैंने निवेदन किया—‘नहीं सर, अब मैं चला जाऊँगा ।’ उन्होंने कहा—‘आप बैठकर हमको अपने गाँवका रास्ता दिखलावें ।’ ७। बजे मेरे गाँवमें जीप पहुँची । ड्राइवर महोदयने साइकिल जीपसे नीचे उतारनेमें सहायता प्रदान की ।

ये मुझे छोड़कर जानेके लिये तैयार हो गये । मेरे अत्यधिक आग्रह करनेपर चाय पीना स्वीकार किया । इस बीच पिताजीने इनके प्रति आभार प्रकट किया किंतु पिताजी अंग्रेजी नहीं जानते थे, इसलिये उनकी बातें उन महोदयोंके समझमें नहीं आयी । हमने भोजनका भी आग्रह किया किंतु उन सज्जनोंने स्वीकार नहीं किया । रात्रि विश्रामके लिये कहा किंतु वह प्रस्ताव भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया ।

विदा लेते हुए मैंने बहुत सुक्रिया अदा किया किंतु उनके शब्द थे—‘संकटमें पड़े हुएकी सेवा करना मनुष्य-मात्रका प्रथम कर्तव्य है । हमने अपना कर्तव्य निभाया है, कोई बड़ी बात नहीं की ।’

इन दोनों सज्जनोंके नाम हैं—(१) डेविड विलियम—जो ड्राइविंग कर रहे थे । और (२) हरवर्ट पोपलेण्ड—जो ड्राइवरके साथी थे । दोनों महानुभाव अंग्रेज हैं । भोपाल स्थित एच० ई० एल०में सर्विस करते हैं और इंगलैंडसे आये हुए हैं ।

स्मरण रहे, इनके साथ सारी बातें अंग्रेजीमें हुई; क्योंकि ये हिंदी नहीं जानते थे । जब मुझे यह घटना याद आती है तब वह दृश्य आँखोंके सामने नाच उठता है और दिल यह कह उठता है—‘धन्य है ऐसे परोपकारी सज्जनोंको और उनके नेक विचारोंको । हमें इनसे सीखना चाहिये ।’

—लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव
ग्राम—बन्दोर्ण

(४)

चिथड़ेमें छिपे लाल

सिरपर काँच या पीतलके बरतनोंकी टोकरी लिये कुछ फेरीवाले पुरुष और स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ आवाज लगाते

घूम करते हैं और वे पुराने जरी-कामके कपड़े, गोटाकिनारी आदि खरीदा करते हैं अथवा उन्हें लेकर बदलेमें बरतन दिया करते हैं । कई बार ये फेरीवाले धोखा भी दे जाते हैं ।

एक दिन हमारे एक दूरकी सम्बन्धी माताजी गलीमें बालकोंको खिला रही थीं, वहाँ उन्हें ऐसे ही एक फेरीवालेकी आवाज सुनायी दी । माताजीके पास कुछ पुरानी फैशनके कपड़े पड़े थे । घरमें आजकल उन्हें कोई भी पहनता न था । अतः माताजीने सोचा, इन कपड़ोंको देकर बदलेमें कोई बरतन ले लिया जाय । इस उद्देश्यसे उन्होंने फेरीवालेको बुलाया । फेरीवालेके आनेपर माताजी घर गयीं और पिटासीमेंसे एक पुरानी जरी-कामकी साड़ी निकालकर लायीं । फेरीवालेने कुछ देरतक साड़ीको देखा और उसपर हाथ फेरता रहा । फिर माताजीके हाथोंपर रखकर वह चल दिया । माताजीको साड़ीके बदलेमें कुछ बरतन मिलनेकी आशा थी । अतएव उनको आश्चर्य हुआ और उन्होंने फेरीवालेसे पूछा—‘क्यों भाई ! तू कुछ भी नहीं बोलता, क्या यह साड़ी एकदम फेंक देने लायक है ?’

फेरीवालेने घूमकर गम्भीर स्वरमें कहा—‘माजी ! साड़ी एकदम ठीक है, इसके तार असली सोनेके हैं, इस साड़ीके सहज ही पचीस-तीस रुपये उठने चाहिये । मेरे पास इतने पैसे थे नहीं, इसीसे मैं बिना कुछ कहे यह विचारकर लौट चला था कि अबकी बार पैसे लेकर आऊँगा, तब माजीसे साड़ी खरीद लूँगा ।’

माताजीको फेरीवालेकी बातपर विश्वास नहीं हुआ । फिर उन्होंने बाजारमें जाँच करवायी तो फेरीवालेकी बात सच निकली । माताजीने शामको जब यह बात बतायी तब हमलोगोंके मनमें आया कि धरतीने अभी तक अपना सारा नूर नहीं खो दिया है । सम्भव है फेरीवालोंमें ठगोंकी संख्या अधिक हो, तथापि कहीं-कहीं कोने-किनारे अब भी ऐसे चिथड़ेमें छिपे लाल रत्न मिलने दुर्लभ नहीं हैं ।
(अखण्ड आनन्द)

—बी० जे० कापडी

(५)

बसयात्रा और एक फरिश्ता

कोई रातके सवा दस बजे होंगे । मैं अपने डेढ़ वर्षीय पुत्रको गोदमें लिये दिल्ली गेटके बस-स्टॉपपर खड़ा बसकी

इंतजार कर रहा था। सर्दी के दिन थे। जनवरी मासकी सर्दी! शीतकी लहर अपना रंग अच्छी प्रकार दिखला रही थी। बसकी काफी देर इंतजार कर कुछ लोग तो स्कूटर-टैक्सी इत्यादिके द्वारा गन्तव्य स्थानको चल पड़े। अब मैं बस-स्टापपर अकेला था। सोच ही रहा था कि बस न मिली तो टैक्सीके पैसे खर्चने पड़ेंगे। उधर गोदमें नन्हा बालक सर्दीसे ठिठुर-ठिठुरकर मुझे टैक्सी कर लेनेकी बार-बार प्रेरणा दे रहा था। मुझे पुत्र और पतिकी बाट जोहती गृहिणीका ख्याल आता तो और भी हृदय धवरा उठता। अन्तमें मैंने टैक्सी कर लेनेका निश्चय कर ही लिया, परंतु सम्भवतः दैवको इस अविस्मरणीय घटनाको मेरे जीवनकी समस्त घटनाओंमें प्रमुखता देनी थी, इसी कारण तत्काल एक बसने सामनेसे आकर मेरे पाँव टैक्सी-स्टैंडकी ओर जानेसे रोक लिये। मैंने मनमें ईश्वरको लाख-लाख धन्यवाद दिया और बसकी ओर लपका। परंतु बस ठसाठस भरी थी। इसी समय न जाने कहाँसे एक अन्य व्यक्ति आ टपका और उस तीव्र-गतिकने न आव देखा न ताव, मुझे एक ओर करके बसके फुटबोर्डपर पाँव रख दिया। बसमेंसे एक सवारी उतरी थी, अतः कण्डक्टरने दोनों सवारियोंको ले जानेसे स्पष्ट इन्कार कर दिया। मैं बड़ी उलझनमें था। यह समय परोपकारका नहीं था। रात काफी हो चुकी थी और शीतके जोरसे अङ्ग-अङ्ग काँप रहा था। अन्ततः मैंने उन नवागन्तुक महाशयसे ठान लेनेका निश्चय कर ही लिया। मैं शारीरिक शक्तिके नामपर अपने आपको सर्वथा हीन ही मानता रहा हूँ, फिर भी उस समय न जाने कैसे मुझमें शक्तिका अभूतपूर्व संचार हो उठा। मैंने बसके फुटबोर्डपर पाँव अड़ा दिये और उस नवागन्तुकको धकेलकर नीचे कर दिया। परंतु अपने आपको इस समय शक्तिमान् समझ लेना मेरी सरासर भूल थी। यह दो ही क्षणोंमें मुझे मालूम हो गया। नवागन्तुकने दो-चार अपशब्द मुझे कहे और कण्डक्टरको भी धक्का देता हुआ वह ऊपर पहुँच गया। कण्डक्टरको जरा भी दया न आयी और उसने घंटी दे दी। मैं दयनीय नेत्रोंसे उस बसको इस प्रकार जाते हुए देख रहा था, मानो डाकू मेरा सर्वस्व लूटकर लिये जा रहे हों और मैं निस्सहाय खड़ा उन्हें देख रहा होऊँ।

परंतु आश्चर्य! बस जरा ही दूर जाकर रुक गयी। मैं भागकर उसके पास पहुँचा। देखता क्या हूँ कि उसमेंसे एक वृद्ध महाशय उतर रहे हैं। उन्होंने उतरते हुए कहा—

‘आपकी गोदमें छोटा-सा बच्चा है और यह आखिरी बस है। मुझे तो यहीं कोई एकाध मील ही जाना है।’ मैं हतप्रभ-सा उस वृद्धके आश्चर्यजनक निश्चयके सम्बन्धमें सोच ही रहा था कि वे वहाँसे चल दिये और बसके कण्डक्टरने भी घंटी दे दी। मेरे पाँव न जाने कैसे बसके फुटबोर्डपर चले गये और न चाहते हुए भी मैं बसपर चढ़ गया।

बसके यात्री उस वृद्धके इस कर्तव्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहे थे। उन्हींमेंसे एकने यह भी बताया कि वृद्ध बीमार थे। बस काफी दूर जा चुकी थी, अन्यथा मैं बस रोककर उन महाशयको चढ़ानेका प्रयत्न करता। मुझे रह-रहकर कण्डक्टरपर क्रोध आ रहा था, जिसने इस आखिरी बसके समय भी एकाध व्यक्तिके अधिक हो जानेको भी सहन न किया। मैं उसकी इस कर्तव्यपरायणताको कोस रहा था।

मैं घर पहुँचा। रुखे मनसे भोजन किया। पत्नीने मेरी उदासीनताका कारण पूछा, पर मैंने बहाना कर दिया और जाकर बिस्तरपर सो रहा।

प्रातःकाल हुआ। मुझे पत्नीने ‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ लाकर दिया। मैंने प्रथम पृष्ठके शीर्षकोंपर नजर दौड़ानेके बाद ज्यों ही अंदरके स्थानीय पृष्ठपर दृष्टि डाली तो एक समाचार-पर दृष्टि अटकीकी अटकी रह गयी। समाचार था—‘गत रात हार्डिंग ब्रिजके पास एक वृद्धकी सर्दीमें ठिठुरकर मृत्यु हो गयी।’ मेरी साँस ऊपरकी ऊपर और नीचेकी नीचे रह गयी। मैंने झटपट कपड़े पहने और सम्बन्धित विभागके पास पहुँचा उन वृद्धका पता लगाने। वहाँसे पता लगा कि वृद्धके सम्बन्धी उनका शव अपने घर ले जा चुके हैं। मैंने विभागके कर्मचारियोंसे उनके घरका पता लिया और कुछ ही समय बाद मैं वृद्धकी अर्थीके पास खड़ा आँसू बहा रहा था। यह वही रातवाले परोपकारी महाशय थे, जिन्होंने एक बच्चेपर तरस खाकर अपना जीवन बलिदान कर दिया। मेरी विचार-शक्ति अवरुद्ध हो गयी थी। मैं हतप्रभ-सा खड़ा एक कोनेमें अपने आँसू रोकनेका प्रयत्न कर रहा था। और जब मुझे पता चला कि उक्त वृद्ध निःसंतान थे तो उस देवतुल्य मानवके सम्मानमें मेरा मस्तक झुक गया।

यह एक ऐसी घटना है जिसे जीवनमें मैं कभी भुला न सकूँगा। (धर्मयुग)

—श्रीसत्य प्रभाकर

‘कल्याण’के कृपालु तथा परम आत्मीय ग्राहकों और पाठकोंसे निवेदन

(१) यह ‘कल्याण’के ३८वें वर्षका ११वाँ अङ्क है । आगामी दिसम्बरका १२वाँ अङ्क निकलने-पर यह वर्ष पूर्ण हो जायगा । ३९वें वर्षका पहला अङ्क ‘भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क’ विशेषाङ्क होगा । इसमें भगवन्नाम तथा प्रार्थनाके सम्बन्धमें बहुत-से महत्त्वपूर्ण लेख, अनुभूत प्रसङ्ग तथा अन्यान्य अत्यन्त आवश्यक, परम कल्याणकारक तथा रोचक विषय रहेंगे । इसमें बहुत-से तिरंगे तथा इकरंगे भी चित्र रहेंगे । इस अङ्कके अनुसार यथायोग्य आचरण करनेवाले लोक-परलोकमें, भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत्में तथा भीम एवं प्रेममें पर्याप्त सफलता प्राप्त कर-सकते हैं ।

(२) कागजोंके तथा अन्यान्य सामग्रियोंके दाम तथा कर्मचारियोंका वेतन विशेष बढ़ जानेपर भी ‘कल्याण’का वार्षिक मूल्य रु० ७.५० ही रक्खा गया है । आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजकर तुरंत ग्राहक बन जाइये । इस अङ्ककी माँग विशेष होनेकी सम्भावना है । रुपये भेजते समय पुराने ग्राहक मनीआर्डर-कूपनमें अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें । नाम, पता, मुहल्ला, डाक-घर, जिल्ला, प्रदेश आदि साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें । नये ग्राहक हों तो कूपनमें ‘नया ग्राहक’ अवश्य लिखें ।

(३) ‘ग्राहक-संख्या’ न मिलनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है । इससे विशेषाङ्क नये नम्बरोंसे और पुराने नम्बरोंसे बी० पी० द्वारा दुबारा जा सकता है । यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम बी० पी० चली जाय । दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक बी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें । ऐसा करके आप अपने ‘कल्याण’ कार्यालयको व्यर्थकी हानिसे बचायेंगे ।

(४) सभी ग्राहक पाठक महानुभावोंसे तथा ग्राहिका देवियोंसे निवेदन है कि वे प्रयत्न करके ‘कल्याण’ के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें । इससे उनके ‘कल्याण’ के प्रचार-प्रसारमें बड़ी सहायता मिलेगी और वे एक महान् पुण्यके भागी होंगे ।

(५) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ ही ‘कल्याण’ कार्यालयको हानि न सहनी पड़े ।

(६) किसी अनिवार्य कारणवश ‘कल्याण’ बंद हो जाय तो विशेषाङ्क और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका मूल्य ही रु० ७.५० (सात रुपये पचास पैसे) है ।

(७) गीताप्रेस पुस्तक-विभाग तथा ‘कल्याण-कल्पतरु’ (अंग्रेजी) का विभाग ‘कल्याण’ विभागसे पृथक् है । इसलिये ‘कल्याण’ के मूल्यके साथ पुस्तकोंके लिये तथा ‘कल्याण-कल्पतरु’ के लिये रुपये न भेजें; किंतु चेक या ड्राफ्ट सभी गीताप्रेसके नामसे भेजना चाहिये । गोरखपुरके बाहरके चेकोंमें १) एक रुपया बैंक चार्ज जोड़कर भेजना चाहिये । पुस्तकोंके आर्डर ‘व्यवस्थापक, गीताप्रेस’के नामसे तथा ‘कल्याण-कल्पतरु’के रुपये ‘व्यवस्थापक—कल्याण-कल्पतरु’के नामसे भेजें ।

(८) इस वर्ष भी सजिद्ध अङ्क देनेमें बड़ी कठिनाता है और बहुत देरसे दिये जानेकी सम्भावना है । यों सजिद्धका मूल्य रु० ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर पैसे) है ।

व्यवस्थापक—‘कल्याण’, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०

अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई-धर्म-प्रचार-कांग्रेसके नामपर होनेवाला भारतीय संस्कृतिपर भयानक आक्रमण

श्रीमसूराश्रम बंबईके ब्रह्मचारी श्रीदत्तमूर्ति महोदयने आगामी नवम्बरमें होनेवाली 'अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई-धर्म-प्रचार-कांग्रेस'पर पाबन्दी लगानेकी अपीलके रूपमें एक विस्तृत लेख भेजा है, जिसमें उन्होंने इस कांग्रेसको भारतपर एक नये ढंगका भीषण आक्रमण सिद्ध किया है। उनकी बातें तथ्यपूर्ण हैं। 'कल्याण'का यह अङ्क प्रायः छप चुका था, इससे उक्त लेखको पूरा नहीं दिया जा सका। श्रीब्रह्मचारीजी अन्तमें लिखते हैं—

‘वर्तमान स्थितिमें हमारा कर्तव्य है—‘अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई-धर्म-प्रचार-कांग्रेस’ पोपद्वारा हमारे राष्ट्रीय मामलोंमें सीधा हस्तक्षेप है। × × × भारतको ईसाई और अराष्ट्रीय बनानेका प्रयास है। अतः सभी उचित साधनोंसे इसका प्रतिकार किया जाना परम आवश्यक है—हमारी राष्ट्रीय एकात्माकी रक्षाके लिये, हमारी कष्टप्राप्त स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिये, हमारी धर्मनिरपेक्षताके लिये, (हमारी गौरवपूर्ण संस्कृतिकी रक्षाके लिये) और हमारे समाजवादके ध्येयोंकी रक्षाके लिये।’ यह एक नये ढंगसे और सम्पूर्ण शक्तिके साथ किया जानेवाला भीषण आक्रमण है, जो बाहरसे साधारण धार्मिक मेला दीखनेपर भी भारत-संहारके लिये बड़ा भयानक शस्त्र है।

इस सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिये इस पतेसे पत्रव्यवहार करना चाहिये।

—ब्रह्मचारी दत्तमूर्ति

मसूराश्रम, गोरेगाँव, बम्बई ६२

‘कल्याण’के आजीवन ग्राहक बनिये और बनाइये

(आपके इस कार्यसे गीताप्रेसके सत्साहित्य-प्रचार-कार्यमें सहायता मिलेगी)

आजीवन ग्राहक शुल्क १००), सजिल्दका १२५), विदेशका अजिल्दका १२५) या दस पौंड और सजिल्दका १५०) या बारह पौंड। मन्दिर, आश्रम, पुस्तकालय, व्यापारीसंस्था, क्लब या अन्यान्य फर्म भी आजीवन ग्राहक बन सकते हैं।

चेक या ड्राफ्ट ‘मैनेजर, गीताप्रेस’के नामसे भेजनेकी कृपा करेंगे।

व्यवस्थापक—‘कल्याण’, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

दो नयी पुस्तकें

प्रेमदर्शनम् (देवर्षि नारदविरचितानि भक्तिसूत्राणि)

आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या २०४, सुन्दर तिरंगा चित्र, मू० ७५ पैसे।
डाकखर्च ७५ पै० कुल रु० १.५०।

‘कल्याण’-सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके द्वारा की हुई नारदभक्तिसूत्रोंकी हिंदी व्याख्याका यह संस्कृत अनुवाद उनकी दौहित्री श्रीमती राधादेवी भालोटिया बी० ए०के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

गीतामें विश्वरूपदर्शन

लेखक—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ १६, मूल्य छः नये पैसे। डाकखर्च अलग।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)